यूसुफ़ हुसैन ख़ाँ

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख ।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ईसवी
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

यूसुफ़ हुसैन ख़ाँ

लेखक

मसऊद हुसैन ख़ाँ

अनुवादक

निज़ामुद्दीन

साहित्य अकादेमी

अनुक्रम

1

जीवन

वंश, जन्मस्थान, बचपन, शिक्षा, नौकरी

यूसुफ़ हुसैन ख़ाँ का सम्बन्ध कायमगंज, जिला फरुखाबाद (उ.प्र.) के एक अभिजात पठान घराने से था, जिसके पूर्वज हुसैन ख़ाँ 'मद आख़ून' (बड़े उस्ताद) अपने जुड़वाँ भाई हसन ख़ाँ के साथ उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त (वर्तमान पाकिस्तान) के 'तीरः' आज़ाद क़बाइली इलाक़े का निवास त्याग कर, जीविका की खोज में सन् 1715 के आसपास बंगश के नवाबों की रियासत में क़स्बा क़ायमगंज में आकर बस गये थे। उनका सम्बन्ध आफरीदी क़बीले से था और 'खैल', 'मवल खैल' था। क़ायमगज के क़स्बे के बाहर उस नाम का मोहल्ला अब तक आबाद है। 'मद आख़ून' पठानों के शिक्षक, धर्मगुरु तथा सच्चरित्र सूफी थे। उनके पुत्र और पोते अहमद हुसैन ख़ाँ और मुहम्मद हुसैन ख़ाँ ने लेखनी के स्थान पर तलवार हाथ में ली और विभिन्न रजवाड़ों में सिपाही रहे। यूसुफ हुसैन के दादा गुलाम हुसैन ख़ाँ (उर्फ झम्मन ख़ाँ) भी हैदराबाद रियासत की एक कन्टिनजेंट में सैनिक सेवाएँ देते रहे लेकिन अवकाश लेने के बाद उन्होंने अपनी जन्मभूमि की ओर प्रस्थान किया और अपनी कृषि तथा बाग़ों की देखभाल में शेष जीवन व्यतीत किया। उनके बड़े पुत्र अता हुसैन ख़ाँ ने पिता का अनुकरण करते हुए हैदराबाद में ही सेना में नौकरी कर ली, लेकिन छोटे पुत्र फिदा हुसैन ख़ाँ ने हैदराबाद जाकर वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की और फिर ऐसी धूमधाम के साथ वकालत की कि जब सन् 1907 में 39 वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ तो उनकी गणना हैदराबाद हाईकोर्ट के चोटी के वकीलों में होने लगी थी। हुन बरसने लगा था। उन्होंने हाईकोर्ट के सामने मूसी नदी पार बेगमबाज़ार में एक मंज़िला मकान बनवाया, और एक पक्की हवेली अपने पिता गुलाम हुसैन ख़ाँ की देखरेख में पैत्रिक भूमि क़ायमगंज में बनवाई जो जनसाधारण में, अपने भव्य स्वरूप के कारण 'झम्मन ख़ाँ का महल' कहलाने लगा।

फिदा हुसैन ख़ाँ के नाज़नीन बेगम (उर्फ रज्जो) से सात पुत्र उत्पन्न हुए। यूसुफ़ हुसैन ख़ाँ उनकी पाँचवीं सन्तान थे। ज़ाकिर हुसैन ख़ाँ उनके बड़े और महमूद हुसैन ख़ाँ, उनके सबसे छोटे भाई थे। ये दोनों बाद में भारत तथा पाकिस्तान की महान विभूति बने। यूसुफ़ हुसैन का जन्म हैदराबाद के बेगमबाज़ार वाले मकान में 18 सितम्बर 1902 में हुआ था। अभी वह पाँच वर्ष के ही थे कि फिदा हुसैन ख़ाँ का ठीक उत्कर्ष काल में सन् 1907 में यक्ष्मा के कारण निधन हो गया। विवश होकर उनकी माता को अपने छोटे बच्चों की टोली के साथ जन्मस्थान क़ायमगंज लौटना पड़ा। क़ायमगंज में शिक्षा की उचित व्यवस्था न होने

के कारण बड़े पुत्रों को इस्लामिया हाईस्कूल, इटावा, में दाखिल करा दिया, लेकिन यूसुफ़ हुसैन ख़ाँ कम उम्र के कारण क़ायमगंज में माता के पास ही रहे, जहाँ एक मौलवी साहब क़ुरान शरीफ व उर्दू की शिक्षा देने लगे। नौ वर्ष की आयु में सन् 1911 में इटावा के इस्लामिया हाई स्कूल में दाखिल कर दिए गए, जहाँ उनके तीन पुत्र पहले से ही मौजूद थे। इसी वर्ष उनकी माता का प्लेग के रोग में देहान्त हो गया। यह महामारी यूसुफ़ हुसैन के छोटे भाई जाफर हुसैन को भी लील गयी। इस्लामिया हाई स्कूल, इटावा से सबसे बड़े भाई मुजफ्फर हुसैन ख़ाँ (लेखक के पिता) कुछ समय उपरान्त अलीगढ़ आ गए, तो यूसुफ हुसैन ख़ाँ को अलीगढ़ के गवर्नमेंट स्कूल में दाखिल करा दिया गया। इस स्कूल में उन्होने तीन वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की, इसके पश्चात् सन् 1918 में अपने सबसे छोटे भाई महमूद हुसैन के साथ दोबारा इटावा चले गए। वहाँ वर्ष भर निवास किया होगा कि सख्त बीमार पड़ गये। ख्याल था कि पुश्तैनी रोग यक्ष्मा के लक्षण हैं, अतः राय हुई कि शिक्षा-प्राप्ति का सिलसिला त्याग कर कुछ समय तक क़ायमगंज के खुले वातावरण में रहा जाय। क़ायमगंज में स्वास्थ्य बनाने की चिन्ता में उनका वास दो वर्षों तक रहा। उसी समय असहयोग आन्दोलन आरम्भ हो गया और खिलाफत कमैटी के कार्यकर्त्ताओं का क़ायमगंज में आना-जाना शुरू हुआ। यूसुफ़ हुसैन का स्वास्थ्य ज्यों ही तनिक ठीक हुआ वह राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा में कूद पड़े, और "कांग्रेस तथा खिलाफत दोनों के लिए कार्य करना आरम्भ कर दिया। बम्बई की केन्द्रीय खिलाफत कमेटी के आदेश के अनुसार मैंने और महमूद मियाँ ने अपने सब विदेशी वस्त्र खिलाफत कमेटी के दफ्तर के पते पर भिजवा दिये और शुद्ध खद्दर के कपड़े पहन लिये।" (यादों की दुनिया)

अक्तूबर 1920 असहयोग और खिलाफत आन्दोलन की लहर मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़ के उदर से जामिया मिल्लिया ने जन्म लिया। जुलाई 1921 में यूसुफ़ हुसैन अपने छोटे भाई महमूद हुसैन के साथ अलीगढ़ आ गए और जामिया मिल्लिया में दाखिला ले लिया-"यूसुफ़ हुसैन ने कॉलेज की प्रथम कक्षा में और महमूद हुसैन ने स्कूल में। मौलाना मुहम्मद अली अपनी राजनीतिक गतिविधियों के कारण अधिकतर बाहर रहते थे और उनके स्थान पर अब्दुल मजीद ख्वाजा प्रिंसिपली के उत्तरदायित्व का निर्वाह कर रहे थे।" तो भी यूसुफ़ हुसैन, मौलाना मुहम्मद अली के व्यक्तित्व से अत्याधिक प्रभावित रहे और उनकी शिक्षाओं से लाभ उठाया। इनके अतिरिक्त उन्होंने मिस्टर कीलाट, मौलाना असलम जयराजपुरी, मौलाना अब्दुल हयी, मौलाना सूरती और मौलाना शरफुद्दीन टोंकी जैसे श्रेष्ठ अध्यापकों की शिष्यता ग्रहण की। विशेषकर मिस्टर कीलाट, जो एक मालाबारी ईसाई थे और राष्ट्रीय धारा के प्रवाह में जामिया मिल्लिया तक आ गए थे, के ज्ञान से प्रभावित थे। उन्होंने यूसुफ़ हुसैन को इतिहास और राजनीति का चस्का लगाया। इस्लामी इतिहास की शिक्षा मौलाना असलम जयराजपुरी से प्राप्त की, "जिनकी नजर क़ुरान पर गहरी थी।" वह इस युग के विद्वानों में सर्वाधिक रौशन ख्याल थे, अन्धानुकरण के विरोधी तथा विवेकशीलता के अलम्बरदार थे। मौलाना अशरफ टोंकी ने यूसुफ हुसैन की साहित्यिक रुचि का परिष्कार किया। जनवरी 1923 में 'जामिआ' पत्रिका का प्रवेशांक प्रकाशित हुआ जिससे उनके गद्य-लेखन का प्रारम्भ हुआ।

जामिया के छात्र के रूप में यूसुफ़ हुसैन अहमदाबाद (1921) और कानपुर (1925) के इंडियन नेशनल कांग्रेस के सम्मेलनों में शरीक हुए। अहमदाबाद में उन्होंने मौलाना हसरत मोहानी की आज़ादी का वह प्रदर्शन देखा जिसमें महात्मा गाँधी की 'डोमीनियन स्टेटस' (उपनिवेश का दर्जा) के प्रस्ताव का विरोध करते हुए अपने सम्पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पेश किया। यद्यपि यह स्वर व्यर्थ सिद्ध हुआ, लेकिन युवा यूसुफ़ हुसैन का मन उस से अत्यधिक प्रभावित हुआ। इसके पश्चात् वह जीवन भर मौलाना हसरत मोहानी की आज़ादी की भावाना के प्रशंसक रहे। 1924 में यूसुफ हुसैन जामिया मिल्लिया इस्लामिया के छात्रसंघ (Students Union) के अध्यक्ष रहे। कुछ समय के बाद 'जामिया' पत्रिका के सम्पादन की ज़िम्मेदारी भी सभाली। इसी वर्ष ग्रीष्म-अवकाश में कश्मीर जाते हुए लाहौर में महाकवि इक़बाल से भेंट की।

जामिया मिल्लिया में 5 वर्ष रहकर यूसुफ़ हुसैन ने अपनी उच्च शिक्षा पूर्ण की। एक प्रकार से वह इस संस्था के राष्ट्रीय शिक्षा के प्रयोग की प्रथम पैदावार थे। यहीं पर उनकी रुचि इस्लामियात तथा इतिहास में उत्पन्न हुई और उसके वातावरण में उन्होंने उर्दू भाषा व साहित्य को भविष्य के लिए अपना ओढ़ना-बिछौना बनाया। उनका सम्बन्ध उस पीढ़ी से था जिसने सिद्ध कर दिया कि उर्दू-शिक्षा के माध्यम से भी मनुष्य उच्च शिक्षा प्राप्त बनाया जा सकता है।

चूँकि जामिया मिल्लिया से शिक्षा निवृत विद्यार्थियों के लिए उस समय इंग्लैंड के विश्वविद्यालयों के द्वार बन्द थे, अतः मई 1926 में यूसुफ़ हुसैन उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए फ्रांस रवाना हो गए। फ्रांस प्रवास का उनकी साहित्य-रुचि तथा सौंदर्यानुभूति पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। अक्तूबर 1926 से वह सोर बोर्न (पेरिस विश्वविद्यालय) में डॉक्टरेट की डिग्री के लिए विधिवत विद्यार्थी हो गए। उन्होंने शोध के लिए 'भारत के मध्यकालीन सूफ़ी तथा सन्त' विषय का चयन किया और उसके लिए दो प्राच्यविद निर्देशक नियुक्त किए गए-मोसिओ लोई मासियो और मोसियो जोल ब्लोक। उनमें से प्रथम इस्लामियात के प्रसिद्ध विशेषज्ञ थे जिन्होंने मन्सूर हल्लाज पर उच्चकोटि का शोध किया है और दूसरे भारतीय विद्या (इण्डोलोजी) के प्रख्यात विद्वान थे। उनके अतिरिक्त मोसियो सल्वान लीवियी तथा मोसियो फोशे की शिक्षा से भी लाभ उठाया। पेरिस में साढ़े तीन साल निवास करने के बाद उन्होंने यूनिवर्सिटी डाक्टरेट की डिग्री प्राप्त की और फिर तुरन्त भारत के लिए प्रस्थान कर दिया।

अब जीविका की चिन्ता हुई। प्रारम्भ में मौलवी अब्दुल हक़ के साथ उन्होंने 'अंग्रेज़ी-उर्दू शब्दकोश' में कुछ समय तक कार्य किया। मौलवी अब्दुल हक़ के व्यक्तित्व एवं स्वभाव से वह बहुत प्रभावित हुए। उसके पश्चात् अक्तूबर 1930 में वह उस्मानिया विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग में रीडर के पद पर नियुक्त कर लिए गए और उन्नति करके वह प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष हो गए। 27 वर्ष तक विश्वविद्यालय की सेवा करने के बाद 1957 में सेवा निवृत हुए। इतिहास के अध्यापन के अतिरिक्त वह उस्मानिया विश्वविद्यालय में काफी समय तक फ्रांसीसी भाषा की शिक्षा भी देते रहे। उस्मानिया विश्वविद्यालय में उनके गहरे सम्बन्ध प्रोफेसर हारुन खान शेखानी, खलीफ़ा अब्दुल हकीम,

डॉ. मुहीउद्दीन क़ादरी ज़ोर, डॉ. रज़ीउद्दीन सिद्दीकी, डॉ. ईश्वरनाथ, डॉ. जाफ़र हसन, डॉ. सैयद अब्दुल लतीफ, डॉ. मीर वलीउद्दीन, मौलवी इलयास बर्नी, मौलवी मनाज़िर अहसन गीलानी और डॉ. निज़ामउद्दीन से रहे। बीसवीं शताब्दी के चौथे तथा पाँचवे दशक का उस्मानिया विश्वविद्यालय ज्ञान-विज्ञान के सितारों की आकाशगंगा था और यूसुफ़ हुसैन का उनमें एक विशिष्ट स्थान था।

उनकी विद्या-विषयक रुचि साहित्य तथा इतिहास तक सीमित नहीं थीं। जामिया मिल्लिया की शैक्षिक पृष्ठभूमि के साथ वह अन्य विद्याओं व इस्लामी दर्शन के भी उम्र भर विद्यार्थी रहे। दर्शन विभाग प्रोफेसर-अध्यक्ष खलीफा अब्दुल हकीम, इकबाल पर उनके आलेख सुनने के पश्चात् बहुधा कहा करते थे--"आपको इतिहास विभाग के बजाय दर्शन-विभाग में होना चाहिए था।"

इन विद्वानों की व्यावसायिक संगतियों के अतिरिक्त यूसुफ़ हुसैन के समकालीन साहित्यकारों और कवियों से भी मधुर तथा सुहृद् सम्बन्ध रहे। उनमें हैदर यार जंग नज्म तबाताई, फसाहत जंग जलील, आग़ा हैदर हसन, मिर्ज़ा हादी रुसवा, फरहतुल्ला बेग, जोश मलीहाबादी और फना बदायूनी जैसे काव्य-पारखी कवि सम्मिलित थे। मौलाना हसरत मोहानी और जिगर मुरादाबादी के तो वह भक्त थे। इसलिए जब ये महानुभाव हैदराबाद आते तो उनसे भेंट करने का अवसर हाथ से नहीं जाने देते थे। जिगर मुरादाबादी अनेक बार उनके यहाँ अतिथि रहे।

जामिया मिल्लिया से उस्मानिया विश्वविद्यालय तक उर्दू भाषा यूसुफ़ हुसैन के लिए ओढ़ना-बिछाना थी। क्या इतिहास, क्या साहित्य और क्या दर्शन उसी में उन्होंने अपनी श्रेष्ठता दर्शाई और सिद्ध कर दिखाया कि एक भारतीय भाषा को उच्च स्तरीय बौद्धिक चेतना के सम्प्रेषण का माध्यम बनाया जा सकता है।

हैदराबाद में ही सन् 1948 में उन्होंने आसिफ जाही शासन और उस्मानिया विश्वविद्यालय के विनाश की लीला अपनी आँखों से देखी जिसकी प्रतिक्रिया उन्होंने अपनी आत्मकथा में इस प्रकार अंकित की है-

"मुझे हैदराबाद के विनाश और आसिफ जाही वंश के शासन की समाप्ति का अत्यधिक खेद था। न केवल यह कि मैं हैदराबाद में उत्पन्न हुआ था बल्कि भावनात्मक रुप से मैंनें अपने आपको हैदराबाद से सम्बद्ध कर लिया था:- .....मैंने अपने निवास की अवधि में अनेक बार यह अनुभव किया कि यदि यथार्थरूप में देश के किसी भाग में अखण्ड भारतीय संस्कृति के चिन्ह दिखाई देते हैं तो वह केवल दक्षिण में।" ('यादों की दुनिया' पृ. 403-404) सन् 1957 में सेवानिवृत होने से एक वर्ष पूर्व सन् 1956 में भारत सरकार ने यूसुफ़ हुसैन को एक माह के लिए आस्ट्रेलिया के विश्वविद्यालयों में भारतीय संस्कृति पर व्याख्यान देने के लिए भेजा था, जो अत्यन्त सफल रहे।

उस्मानिया विश्वविद्यालय की सेवा की अवधि में यूसुफ़ हुसैन ने लगभग सात वर्ष हैदराबाद पुरातत्व में पहले 'क्यूरेटर' और इसके बाद परामर्शदाता के रुप में कार्य किया। उस समय उन्होंने वहाँ शास्त्र-भण्डार के चयनित ऐतिहासिक दस्तावेज़ों के छः भाग प्रकाशित किए जो भारतीय मध्ययुगीन इतिहास पर शोध करने के लिए अपरिहार्य एवं

बहुमूल्य सामग्री प्रकाशित करते है। उनमें मूल फ़ारसी के साथ अंग्रेज़ी-अनुवाद भी दिया गया है।

हैदराबाद के निवास की अवधि में यूसुफ़ हुसैन की विभिन्न साहित्यिक गतिविधियों में त्रैमासिक पत्रिका 'सियासत' का प्रारम्भ भी सम्मिलित है जो पाँच वर्षों तक नियमित प्रकाशित होती रही और जिसकी साहित्य-जगत् में काफ़ी प्रसिद्धि थी।

सेवानिवृत होने पर सन् 1958 में उनकी नियुक्ति इण्डियन नेशनल आरकीव्ज के निदेशक के रूप में हो गई। वहाँ जाने के लिए पर तौल ही रहे थे कि मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़ से उन्हें प्रोवाइस-चांसलरी की पेशकश मिली जिसको उन्होंने सरकारी नौकरी पर प्राथमिकता दी और सन् 1958 में वह अलीगढ़ आ गए। उपकुलपति के रुप में उन्होंने मुस्लिम विश्वविद्यालय की सेवा लगभग सात वर्षों तक की और उस अवधि में उन्होंने कर्नल बशीर ज़ैदी, बदरुद्दीन तैयब जी और नवाब अलीयावर जंग तीन वाइस चांसलरों के साथ काम किया। प्रोवाइस-चांसलर के रूप में वह बहुत कर्मठ सिद्ध हुए। कभी-कभी उनके तथा वाइस चांसलर के मध्य मतभेद भी रहा, लेकिन वह अलीगढ़ के अधिकांश छात्रों तथा प्राध्यापकों में अति लोकप्रिय रहे। चूंकि वह अपने स्वभाव तथा विचार की दृष्टि से वामपंथी प्राध्यापकों से मतभेद रखते थे, अतः इस वर्ग ने उनके विरुद्ध खूब कीचड़ उछाली और केन्द्रीय सरकार तक उनके विषय में मिथ्या संदेश फैलाया।

अपनी प्रोवाइस-चांसलरी की अवधि में मुस्लिम विश्वविद्यालय की शोधपत्रिका 'फ़िक्र-व-नज़र' के सम्पादक भी रहे और मौलाना आज़ाद पुस्तकालय के कुछ समय तक मानद पुस्तकालय-अध्यक्ष भी रहे, जहाँ उन्होंने सर सैयद और मुस्लिम विश्वविद्यालय के विषय में अनुसन्धानपरक सामग्री श्रमपूर्वक सम्पादित की।

सन् 1965 में मुस्लिम विश्वविद्यालय की प्रोवाइस-चांसलरी से सेवानिवृत होने के बाद वह शिमला के इंस्टिट्यूट आफ एडवांस्ड स्टडीज़ के फैलो हो गए और शिमला में निवास किया, जहाँ उन्होंने "Indo Muslim Polity" के शीर्षक से एक शोधग्रन्थ लिखा। साहित्यिक कार्य में उनकी लगन का ज़िक्र करते हुए शिमला इंस्टिट्यूट के उस समय के निदेशक प्रो. निहार रंजन राय ने लेखक से एक सेमिनार के अवसर पर उनके विषय में कहा था-"यह वयोवृद्ध व्यक्ति जिस लगन के साथ अपने साहित्यिक कार्य में व्यस्त रहता है, काश! हमारे युवा शोधकर्ता उसका दसवां भाग भी, अपनी ज़िम्मेदारियों से मुक्त होने की कोशिश करते।"

शिमला से सेवानिवृत होने के बाद जीवन के शेष दिन उन्होंने 'निज़ामुद्दीन वैस्ट' के एक छोटे-से किराए के मकान में गुज़ार दिए, जहाँ वह हर समय साहित्य-लेखन में तल्लीन रहते। उन्हीं दिनों में उन्होंने ग़ालिब और इक़बाल पर कई ग्रन्थ लिखे। (विवरण आगे देखिए) और एक ऐसे साहित्यिक ऋण को चुकाया जिसका भार वह अपने मन में आरम्भ से ही महसूस कर रहे थे। उसी समय में वह 'अंजुमन तरक़्क़ी-ए उर्दू' के उपाध्यक्ष निर्वाचित हुए और जीवन भर बने रहे। कुछेक वर्षों तक उन्होंने ग़ालिब इंस्टिट्यूट के सचिव के रूप में भी कार्य किया।

जब मैं जामिया मिल्लिया इस्लामिया का उपकुलपति था तो बहुधा उनकी सेवा में उसी मकान में उपस्थित होता था। जब वहाँ से निकलता तो अजब घुटन होती थी। अल्लाह! अल्लाह!। जिस व्यक्ति ने जीवन भर 'बंजारा हिल' (हैदराबाद) की भव्य और स्वस्थ वातावरण की कोठी में बैठकर साहित्य-सृजन किया हो, और उसके बाद मुस्लिम विश्वविद्यालय के प्रोवाइस-चांसलर के विशाल बंगले में रचनात्मक जीवन के सात वर्ष व्यतीत किए हों, अब निज़ामुद्दीन के ढ़ाई कमरे के किराए के मकान में एक छोटे-से कमरे में बैठकर ग़ालिब व इक़बाल पर ज्ञान के मोती बखेर रहा है! विश्वास नहीं होता कि वह उस 'कालकोठरी' में (जहाँ उनके सोने का पलंग भी मौजूद था) साहित्य व कला को जीवन के लिए रचना करने का उत्साह क्योंकर बनाए रखे जबकि उसी समय उनके मोतिया बिन्द के लगातार दो आप्रेशन हुए।

उन्होंने अंतिम सांस तक लेखनी नहीं छोड़ी। उनके प्राण लेवा रोग तपेदिक में ग्रस्त होने से केवल एक दिन पूर्व जब उनसे मेरी भेंट हुई तो बहुत प्रसन्नचित थे, इसलिए कि उसी दिन उन्होंने अपनी अंतिम कृति 'ग़ालिब और इक़बाल कि मुतहर्रिक जमालयात' की भूमिका पूर्ण की थी।

5 फरवरी से 21 फरवरी (1979) तक वह 'होली फेमिली अस्पताल' में अर्धचेतन अवस्था में जीवन व मृत्यु के बीच झूलते रहे। जब भी ख़ैरियत मालूम करने उनके कमरे में गया हूँ, मैंने देखा कि उनकी उंगलियाँ, जो अबतक लेखनी बन चुकी थीं, बिस्तर पर उसी प्रकार चल रही थीं, जैसे वह शेष 'जुनूं की हिकायते खूं चकां' लिख रहे हों: लेकिन उनकी यह लिपि अब कोई नहीं पढ़ सकेगा।

2

व्यक्तित्व और स्वभाव

(यूसुफ़ उसको कहूँ और कुछ न कहे ख़ैर हुई)

नाक-नक्शे, और शक्ल-ओ-सूरत की दृष्टि से यूसुफ़ हुसैन यथानाम तथा गुण थे। लम्बा क़द, लाल व सफेद चेहरा, सुतवां नाक, पतले अधर और चौड़ी कलाइयों के मालिक थे। मेरे विचार में वह हमारे परिवार में सर्वाधिक 'सुन्दर' व्यक्ति हुए हैं। उनके विषय में यह कहना सरल है- 'यौवन से वृद्धावस्था तक एक जैसा।' प्रत्येक अवस्था में हल्के शारीरिक व्यायाम के प्रेमी रहे। विद्यार्थी जीवन में हाकी के अच्छे खिलाड़ी थे। अच्छा भोजन और अच्छे वस्त्र-सूट हो या शेरवानी जो धारण किया, वही श्रृगांर बन गया। उनका पारिवारिक जीवन बहुत समृद्ध था। पत्नी अधिक शिक्षित न थी, लेकिन घर का दीप बनकर उनकी आवश्यकताओं तथा सुविधाओं का पूर्ण ध्यान रखती थीं। वह भी उनका कहा कम टालते थे।

उनका दस्तरख्वान बहुत विशाल था। मेहमाननवाजी उनकी प्रकृति थी। किसी को उस गुण से विहिन पाते तो बड़े मजे में कहते-"अमुक व्यक्ति का दिमाग़ एक एतबार से खाली है।"

भावुक तथा स्वाभिमानी थे। स्वाभिमान (ख़ुद्दारी) का उनके यहाँ कोई मूल्य नहीं था, जब उसे ठेस लगती तो बड़े-बड़ों से टक्कर लेने पर तैयार हो जाते। प्रमुख व्यक्तियों और धारणाओं को विश्वसनीय नहीं समझते थे। अतः जहाँ रहे उनसे संघर्ष करते रहे। मैं सन् 1962 में जब उस्मानिया विश्वविद्यालय के अध्यक्ष के रुप में पहुँचा तो उन्हें हैदराबाद छोड़े हुए चार वर्ष हो गए थे, लेकिन उनकी विद्वत्ता तथा शालीनता की चर्चाएं सुनी। क्या अध्यापक और क्या उनके पुराने छात्र, प्रत्येक को उनकी स्मृतियों में डूबा पाया। मुस्लिम विश्वविद्यालय में वह सात वर्ष रहे और जब वहाँ से चले तो अध्यापकों एवं छात्रों का एक बड़ा वर्ग उनका भक्त था। सच तो यह है कि वह जहाँ भी रहे 'यूसुफ़ बाकारवाँ'[1] बनकर रहे।

उनके साथ कारवाँ प्रत्यके युग में इसलिए साथ रहा कि वह साहस और अभय का उच्च नमूना थे। जो दिल में होता वही ज़ुबाँ पर होता, इस दृष्टि से वह अपने दादा ग़ुलाम हुसैन ख़ाँ के स्वभाव का नमूना थे ; सत्यनिष्ठ, स्पष्टवक्ता एवं निर्भय। हित-परामर्श को वह राजनीति समझते और राजनीतिक चालबाजों के विषय में उनका अच्छा मत नहीं था।

1. हज़रत यूसुफ़ अपने भाइयों तथा अन्य लोगों के साथ रहते थे।

सम्भवतः इसी कारण उनका शैक्षिक जीवन अधिक सफल रहा, जबकि उनके प्रशासनिक जीवन में अनेक लोगों से निरन्तर खटपट रही।

उनका स्वभाव अध्यात्म तथा भौतिकता का अद्भुत मेल था। बातचीत में एक बार उन्होंने मुझ से कहा था- मेरे अन्दर यह दोनों गुण परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। उन्हें उच्च स्तरीय जीवन यापन करने में रुचि थी, लेकिन उनकी व्याकुल आत्मा इससे दूर, किसी अन्य वस्तु की खोज करती रहती जिसके लिए वह सजदा करते और कभी पवित्र कुरान का पाठ करने में लीन रहते। इक़बाल के न केवल अनथक भाष्याकार थे, बल्कि मौलाना मुहम्मद अली की भाँति उन्होंने भी इस्लाम को इक़बाल के चिन्तन द्वारा समझा था। वह भी इक़बाल के समान सम्पूर्ण सत्य की एक धार्मिक अवधारणा रखते थे। इस्लामी सभ्यता व संस्कृति के न केवल इतिहासकार थे बल्कि उसे हृदय से प्रिय समझते थे। उन्हें अपने मुसलमान होने पर गर्व था, और अपने भारतीय होने पर भी। उनका मानसिक प्रशिक्षण जामिया मिल्लिया में राष्ट्रीयता तथा इस्लामियात के दोराहे पर हुआ था। परिस्थितियाँ बदलने के साथ-साथ राष्ट्रीयता की भावना मन्द होती गई और इस्लामियात पर विवशता छाती गई।

उनकी मानसिक संरचना के ताने-बाने धर्म और शरीअत से तैयार हुए थे, इसलिए मार्क्स-चिन्तन के वह सदैव आलोचक रहे और इधर-उधर घूमने से दूर रहे। दरअसल वह जाप-मंत्र से अधिक व्यावहारिक मनुष्य थे और व्यवहार की कसौटी पर प्रत्येक चिन्तन-पद्धति को परखते थे। इस दृष्टि से उन्हें इस्लाम की जीवन-पद्धति एक उच्च स्तर की दिखाई देती थी।

स्वभाव से वदान्य थे और लाचारों की गुप्त सहायता भी करते थे। अपने बच्चों, पत्नी एवं परिवारवालों से प्रेम स्नेह रखते थे। बुरा समय आने पर उनके लिए जो कुछ बन पड़ता, करते। जीवन के अंतिम समय में

"तू किश्ते गुल-व-लाला ब बख़्शद ब ख़रे चन्द"

(बहुमूल्य खजाना तुच्छ व्यक्ति पर लुटा देते थे।)

के दृश्य से कभी-कभी प्रभावित हो जाते, लेकिन इस संकट-चक्र से वह अपने संयमित, व्यवस्थित जीवन और कर्मोत्साह के द्वारा बाहर निकल आते। विद्या एवं विद्वानों का आदर करते थे। रशीद अहमद सिद्दीकी का ज़िक्र श्रद्धापूर्वक करते थे। काज़ी अब्दुल वदूद की विद्वत्ता के प्रशंसक थे। छोटों के कार्यों की प्रशंसा करते और उनका कार्य करने का उत्साह बढ़ाते।

मुस्लिम विश्वविद्यालय के वह कभी विद्यार्थी नहीं रहे लेकिन इस संस्था के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य तथा भावी नियति को उन्होंने जिस प्रकार अपने विवेक से आवृत किया है वह भारतीय मुसलमानों की भावना का पूर्णतः प्रतिनिधित्व करता है-

"जो लोग इस्लामी चरित्र के भाव से अनभिज्ञ हैं या जिनकी दृष्टि में इसका कोई मूल्य नहीं है, वह उसे राष्ट्रीय एकता की भावना के विरुद्ध समझते हैं। इस्लामी चरित्र से तात्पर्य यह है कि मुस्लिम छात्रों में धार्मिक भावना, इस्लामी जीवन-शैली के प्रति आदरभाव, राष्ट्रीयता की भावना के साथ-साथ जागरूक हो। विश्वविद्यालय के सभी

विभागों में-चाहे शैक्षिक हों या प्रशासनिक मुसलमानों की स्पष्ट बहुलता रहे, सरकार के मनोनीत सदस्यों की संख्या कम-से-कम रखी जाए। ग़ैर मुस्लिम सदस्य ऐसे मनोनीत एवं निर्वाचित किए जाएं जो मुसलमानों की सभ्यता और रीतिरिवाज से परिचित हों, और विश्वविद्यालय के सच्चे हमदर्द हों। यह बातें न प्रतिक्रियावादी (या लकीर का फकीर होना) हैं, न साम्प्रदायिक हैं और न राष्ट्रीय एकता तथा धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध हैं, बल्कि यह अल्पसंख्यकों का संवैधानिक मान्य अधिकार है जिसको सरकार समाप्त नहीं कर सकती ; सिवाय ऐसी दशा के कि वह अन्याय पर उतर आए।"

(*यादों की दुनिया,* पृ. 459)

3

इक़बालयात

(इक़बाल विषयक साहित्य)

जिस युग से यूसुफ़ हुसैन के मानसिक निर्माण व विकास का सम्बन्ध है, उसे हम 'इक़बाल युग' कह सकते हैं। जब वह जामिया मिल्लिया इस्लामिया (अलीगढ़-युग) में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, मौलाना मुहम्मद अली मुसलमानों की राजनीति पर छाए हुए थे और मौलाना मुहम्मद अली के मस्तिष्क पर इक़बाल। उन दिनों मौलाना की बग़ल में 'इस्रोर-खुदी' और 'रमूज़े बे-खुदी' की प्रतियां रहतीं। कक्षा में और उसके बाहर इक़बाल के अंश आर उनकी जुबान पर होते, उनकी व्याख्या करते जाते और रोते जाते। यह तो बहुत बाद की बात है कि इक़बाल की राजनीतिक निष्क्रियता से तंग आकर मौलाना उन्हें 'स्वर्गीय इक़बाल' कहने लगे थे। बहरहाल, जाकिर हुसैन हों या यूसुफ़ हुसैन, आबिद हुसैन हों या गुलामुसैयदैनु, सम्पूर्ण पीढ़ी इक़बाल के काव्य एवं दर्शन की प्रशंसक थी और उससे संतुष्ट थी। यूसुफ़ हुसैन भी अपने जामिया मिल्लिया इस्लामिया के विद्यार्थी-काल से उस दाना-ए-राज (रहस्यज्ञाता) के काव्य एवं दर्शन पर मोहित थे। यूरोप-प्रवास के दिनों में भी जिन दो कवियों के काव्यसंग्रह उन्होंने सदा अपने सिरहाने रखे वह ग़ालिब और इक़बाल के ही थे।

1. रूहे-इक़बाल

'रूहे-इक्बाल' एक प्रकार से यूसुफ़ हुसैन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक रचना है। यह प्रथम बार 1942 में हैदराबाद से प्रकाशित हुई, इसके पश्चात् उसके छः संस्करण भारत में, कई संस्करण पाकिस्तान में प्रकाशित हुए, जिनमें सातवां संस्करण ग़ालिब अकादेमी, दिल्ली ने इक़बाल शताब्दी संस्करण के रूप में प्रस्तुत किया। यह संशोधित एवं परिवर्धित सम्पूर्ण संस्करण है जो लेखक के निर्देशन में प्रकाशित हुआ था।

'रूहे-इक़बाल' महाकवि इक़बाल के चिन्तन व कला पर उन तीन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में से एक है जो उनके निधन के पश्चात् साहित्य-जगत् में आए। दूसरे दो ग्रन्थ सबाहउद्दीन अब्दुर्रहमान का 'इक़बाले-कामिल' और खलीफा अब्दुल हकीम का 'फिक्रे-इक़बाल' हैं।

रूहे-इक़बाल के लेखक ने अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए इक़बाल के चिन्तन एवं कला को तीन भागों में विभक्त किया है-(1) कला (2) संस्कृति (3) धर्म। इन तीन भागों के अन्तर्गत जीवन की अधिकाशं समस्याएं आ जाती हैं। कुल मिलाकर

यूसुफ़ हुसैन का यह विचार उचित है कि- "इक़्बाल के भावों को हम यद्यपि एक चिन्तन-पद्धति के अनुसार सम्पादित कर सकते हैं तथापि वह वास्तव में कवि है और केवल दार्शनिक या चिन्तक की भाँति तर्क के प्रतिबन्धनों को स्वीकार नहीं करता।"

मेरे विचार में 'रूहे-इक़्बाल' के उपर्युक्त तीन भागों में यूसुफ़ हुसैन 'संस्कृति' वाले भाग में अधिक गहन दृष्टि के साथ, सफलता से सामने आए हैं। एक व्यवसायी इतिहासकार के रूप में वह संस्कृति, दर्शन की बहस से भली-भाँति परिचित हैं। उनकी दृष्टि विश्व-इतिहास पर भी है और इस्लामी इतिहास के उतार-चढ़ाव पर भी। सम्भवतः यही कारण है कि इक़्बाल के सामूहिक चिन्तन की ज़िम्मेदारी पूरी तरह निभा सके हैं। ऐतिहासिक दृष्टि (पृ. 194) के प्रसंग में कितनी सूक्ष्मता से लिखते हैं-

"इक़्बाल के निकट किसी जाति का इतिहास उसके सामूहिक स्वाभिमान को क़ायम रखने का साधन हैं। इतिहास तथ्यों एवं घटनाओं का व्यर्थ अम्बार नहीं। उसे कथा-कहानी समझकर नहीं पढ़ना चाहिए। यह साधन है सामूहिक चेतना और चरित्र के सुदृढ़ और अक्षय बनाने का। विश्व-इतिहास एक निरन्तर रचनात्मक प्रक्रिया है। इसके द्वारा मानव-जीवन और मानवीय नियमों पर आलोचना सम्भव है। इतिहास अपने आपको दोहरता भी है और नहीं भी। निरन्तर परिवर्तन तथा सृजन से मानवीय संगठनों की एकता अस्तित्व में आती है और फिर वह परिवर्तित होकर नए-नए रूप धारण कर लेती है। जीवन की एकता भी बनी रहती है और लगातार परिवर्तन भी होता रहता है। जीवन अपनी आवश्यकताओं के अनुसार अपने शाश्वत तथा परिवर्तनशील तत्वों में समन्वय करता है। जो संगठन अपने-आपको सृजन की धारा के साथ जोड़ लेते हैं वह फलते-फुलते हैं और जो उसके महत्त्व को हृदयंगम नहीं करते अधोगति को प्राप्त होते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि मानव-ज्ञान का अति महत्त्वपूर्ण स्रोत है। जिस प्रकार वस्तु के गुण हैं उसी प्रकार कर्म के गुण होते हैं। जातियों के कर्म से जो फल एकत्रित होते हैं उनसे ज्ञान एवं दृष्टि के अतिरिक्त प्रेरणा भी प्राप्त होती हैं। जातियों के उत्थान-पतन के कारण ज्ञात करना मानव-ज्ञान में अभिवृद्धि है। इतिहास को क़ुरान में 'अय्यामे-इलाही' (अल्लाह के दिन) कहा गया है, जो आत्मा तथा विश्व के अतिरिक्त मानव-ज्ञान का स्रोत है। जिससे हमें मनुष्य की सफलताओं - असफलताओं के विषय में सूचना प्राप्त होती है।"

आगे चलकर इस नुक्ते का स्पष्टीकरण इन शब्दों में किया है-

"विश्व-इतिहास सर्वाधिक अनुभूत रूप है जिसमें जीवन की वास्तविकता हमारी चेतना में प्रकट होती है। यह प्रकृति और काल का स्पष्ट न्याय तथा ज्ञान है। हमारे लिए यह सम्भव नहीं कि हम जातियों के जीवन का विचार उनके इतिहास से पृथक होकर न्यायोचित रूप में कर सकें। हम काल्पनिक अस्तित्व को यथार्थ गुणों से गुणवन्त करने में कभी सफल नहीं हो सकते। मनुष्य समझता है कि उसका वास्तविक जीवन केवल वर्तमान क्षण का जीवन है। यह एक भ्रामक दृष्टि है। वास्तव में मनुष्य के प्रत्येक कर्म में भूत, वर्तमान और भविष्य सम्बद्ध रहते हैं। जीवन के प्रत्येक परिवर्तन और कर्म के रूप में उनका मौजूद रहना आवश्यक है। भूत का वर्तमान से अटूट सम्बन्ध है, उसे पृथक कर दिया जाए तो वर्तमान का अर्थ शेष नहीं रहता। भविष्य स्वतंत्रता और सम्भावनाओं से

अभिहित है, जो प्रत्येक कर्म में मौजूद है। इतिहास से तथ्यों और घटनाओं का आध्यात्मिक तत्त्व स्पष्ट होता है, जिसमें उनके वास्तविक अर्थ निहित हैं, यानी जीवन की वास्तविकता एक प्रकार है जिसमें भूत और भविष्य दोनों संग-संग मौजूद रहते हैं। इस तथ्य की कल्पना इतिहासकार का चिन्तन कर्म की दशा में करता है। यही कारण है कि एक विशेष युग का इतिहास दूसरे युग के लिए निष्प्राण तथा निरर्थक हो जाता है। भावी जीवन अपने गर्म सांस से घटनाओं को गर्मी और हरकत प्रदान करता है। वह इतिहासकार जो अपने चिन्तन और कल्पना के द्वारा "नफ़स हाय रमीदः-मिटे हुए चित्रों को वापस नहीं ला सकता और उन्हें नवीन अर्थ प्रदान नहीं कर सकता, वह कल्पना की भूल-भूलैयों में भटका-भटका फिरेगा और उसके चिन्तन के फल जीवन की नित् नई परिस्थितियों के विरोधी न हो सकेंगे।"

'रुहे-इक़बाल' के इस अध्याय के कुछ अंश यूसुफ़ हुसैन की दार्शनिक लेखन-शैली के उत्तम दृष्टान्त हैं, बल्कि यह कहा जाए कि उनकी मिसाल उर्दू गद्य-लेखन में डा. आबिद हुसैन के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलती, तो अतिशयोक्ति न होगी। उनके इस तरह के दार्शनिक गद्य-लेखन का एक और उदाहरण इस अध्याय में इतिहास की इस्लामी दृष्टि के विश्लेषण में मिलता है-

"इतिहास की इस्लामी दृष्टि में जीवन की उन्नति और एकता स्वीकार की गई है। इसीलिए पैग़म्बर मुहम्मद साहब से पूर्व जो नबी हुए हैं उन सभी को स्वीकारने पर बल दिया गया है ताकि यह सिद्ध हो सके कि नवीन सभ्यता किसी न किसी प्राचीन सभ्यता की तहों पर अपनी तह जमाती और उसकी बुनियादों पर अपनी इमारत खड़ी करती है। इसके जाने बिना विश्व-इतिहास सार्थक नहीं बन सकता। किसी युग में यह दावा करना कि इतिहास सम्पूर्णता की सीमा तक पहुँच गया है, उचित नहीं है। अपनी विशेष दशाओं में इतिहास के किसी युग में यह दावा उचित हो सकता है कि जीवन के उलझाव बहुत हद तक सुलझा दिए गए हैं, और उसे पहले की अपेक्षा और अच्छे मार्ग पर डाल दिया गया है, लेकिन कोई दावा करने वाला अनन्तता का ठेकेदार नहीं बन सकता। इसलिए इस्लामी इतिहास में 'इजतिहाद'[1] का द्वार खुला रखा गया है। इस प्रकार इतिहास युग की सार्थक क्रिया बन जाता है जिसमें मनुष्य को अपनी सम्भावनाएं प्रकट करने के अवसर मिलते हैं अतीत की आधारशिला पर वह नवीन भवनों का निर्माण करता है, अतीत की उपासना नहीं करता। अतीत की उपासना भी एक प्रकार की मूर्तिपूजा है जो इस्लामी आत्मा के विरुद्ध है।" (पृ. 201-2)

इस प्रकार के अन्य ज्ञानवर्धक प्रसंगों का अध्ययन पृ. 220-21 और 229-32 पर भी किया जा सकता है जहाँ सामूहिक जीवन के दर्शन, व्यक्ति और वर्ग के संदर्भ से इक़बाल के चिन्तन पर विश्लेषण किया है।

1. ठीक, सद्मार्ग खोजना। फ़िक़्ह : (धर्मशास्त्र) इस्लाम के अनुसार कुरान व हदीस और इजतमा पर विचार-विमर्श करके शरई प्रश्नों का धार्मिक नियमों से समाधान करना, अर्थ निकालना।

मेरे विचार में इक़बाल के सामूहिक दर्शन की व्याख्या और उसके 'खुदी के दर्शन' से इसका समन्वय अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता। लेखक ने इन्सान के सामूहिक जीवन का विश्लेषण निम्नांकित तीन भागों में किया है-

1. शासन व्यवस्था
2. आर्थिक व्यवस्था
3. मंजिल का उपाय

उनके मतानुसार आधुनिक राष्ट्र अपनी शक्ति तीन सिद्धान्तों से अर्जित करते हैं

1. धर्म व नीति से पराङ्मुख
2. सार्वभौम
3. राष्ट्रीयता की भावना

इक़बाल इन तीनों के आलोचक हैं और इक़बाल के आलोचक यूसुफ़ हुसैन उनसे इस विषय में पूर्ण रुप से सहमत हैं। वह अपने तर्क इस गम्भीर दृष्टि से प्राप्त करते हैं जो उन्हें एक पेशावर इतिहासकार के रुप में नागरिकता के नियमों में प्राप्त थे। इस्लाम की राष्ट्रीय भावना सामाजिक समझौता की दृष्टि से बिल्कुल पृथक है। वह इक़बाल के इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं कि -

"इस्लाम एक राजनीतिक व्यवस्था के रुप में एकेश्वरवाद के सिद्धान्त को मनुष्यों के भावनात्मक और मानसिक जीवन में प्राणवान तत्व बनाने का व्यावहारिक साधन है।"

इक़बाल का सामाजिक एवं आर्थिक चिन्तन स्वयं अपूर्ण है, इसलिए यूसुफ़ हुसैन भी इन दोनों विषयों पर विवश होकर रह गए हैं, लिखते हैं-

"इस्लाम ने एक विशेष प्रकार के पूंजीवाद और विशेष प्रकार के समाजवाद को उचित ठहराया है। उनका विचार है कि "यदि इस्लामी सिद्धान्त के अनुसार कोई अर्थव्यवस्था स्थापित की जाए तो वह सामूहिक अर्थव्यवस्था होगी।" (पृ. 316)

लेकिन चूंकि संसार की अर्थव्यवस्था इतनी पेचीदा हो गई है कि उसकी समस्याओं पर, इस्लामी इतिहास के प्राचीन युग की सरल व्यवस्था के चौखटे में विचार करना अत्यधिक कठिन हो गया है। अतः इक़बाल यह कहकर मौन हो जाते हैं कि "मैं इस्लाम को एक विशेष प्रकार का साम्यवाद ही समझता हूँ।" (पत्र) और यूसुफ़ हुसैन भी इस पर सन्तोष करते हैं-

"साम्यवाद ने आधुनिक सभ्यता को योजनाओं की जो अवधारणा दी है वह मूल्यवान है।" इस प्रकार सामाजिक चिन्तन के कुछ प्रश्नों पर स्वयं इक़बाल के विचार काव्य की अस्पष्टता का शिकार हो गए हैं-

'आज़ादी-निस्वां कि ज़ुमुर्रद का गुलूबन्द'? अर्थात् नारी-स्वातंत्र्य या पन्ना का (हीरे का) कण्ठहार! असल में इक़बाल नर-नारी की पूर्ण समानता के हिमायती नहीं थे, जैसा कि उन्होंने आरम्भ में ही अपने एक अभिभाषण "मिल्लते बैज़ा पर इमरानी नज़र" (मुसलमानों के इतिहास पर सांस्कृतिक दृष्टि) में कहा था-

"मैं नर-नारी की समानता का बिल्कुल भी पक्षधर नहीं हूँ। खुदा ने इन दोनों को पृथक-पृथक सेवाएं सौंपी हैं।" (पृ. 334)

जहाँ तक इक़बाल की कला एवं धार्मिक भावना वाले भागों का सम्बंध है दोनों विषयों पर यूसुफ़ हुसैन से उत्तम लिखा जा चुका है: लेकिन यहाँ भी हमें इक़बाल की आत्मा को भुलाना नहीं चाहिए।

2. हाफ़िज़ और इक़बाल

'रुहे-इक़बाल' के 1976 तक छः संस्करण प्रकाशित हो चुके थे। प्रथम संस्करण (1942) की अपेक्षा संशोधित और परिवर्धित रुप में उसका आकार लगभग दुगना हो गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि 'शताब्दी संस्करण' (1976) में यूसुफ़ हुसैन इक़बाल के कला-चिन्तन पर भरपूर लिख चुके हैं। अब उनका ध्यान ग़ालिब की ओर आकृष्ट हो चुका था जो उनकी पीढ़ी का दूसरा लोकप्रिय कवि था, तो भी इक़बाल के चिन्तन के कुछ रुपों, कोणों की ओर जिज्ञासा शेष रह गई थी। अन्ततः मई 1976 में उन्होंने इक़बाल के अध्ययन के एक उपेक्षित पहलू यानी हाफिज़ और इक़बाल के तुलनात्मक अध्ययन पर एक उत्तम पुस्तक प्रकाशित की जिस पर उन्हें मरणोपरान्त 'साहित्य अकादेमी' ने 1978 का पुरस्कार प्रदान किया।

इस पुस्तक में यूसुफ़ हुसैन की उस आलोचनात्मक दृष्टि का आभास मिलता है जो उन्हें काव्य एवं कला के रहस्य, भेद में प्राप्त थी। भूमिका के प्रथम शब्द यह हैं-

"विद्यार्थी से ही हाफिज़, ग़ालिब और इक़बाल मेरे प्रिय कवि रहे हैं। ग़ालिब और इक़बाल को मैंने जिस ढंग से समझा उसका वर्णन 'ग़ालिब और आहंगे-ग़ालिब' तथा 'रुहे-इक़बाल' में कर चुका हूँ। काफी समय से विचार था कि हाफिज़ पर कुछ लिखूँ। विगत कुछ वर्षों में जब तनिक अवकाश मिला तो मैंने पुनः हाफिज़ का अध्ययन आरम्भ किया। मैंने महसूस किया कि बहुत-से विषयों में हाफिज़ और इक़बाल में समानता है। यदि आरम्भ में इक़बाल ने हाफिज़ की आलोचना की थी तो बाद में उसने महसूस किया कि अपने उद्देश्य को प्रभावशाली बनाने के लिए हाफिज़ की वर्णन-शैली अपनाना आवश्यक है। इसलिए उसने हाफिज़ के शिल्प-विधान का जानबूझकर अनुकरण किया और जैसा कि उसने कहा है, कभी-कभी उसे महसूस हुआ कि मानो हाफिज़ की आत्मा उसमें उतर आई है।"

जब से इक़बाल ने 'असारे खुदी' के प्रथम संस्करण (1915) में हाफिज़ के काव्य के हानिप्रद प्रभावों का वर्णन करते हुए लिखा था-

होशियार अज़ हाफिज़े सहबा गुसार,
जामश अज़ ज़हरे-अजल सरमायादार।

आँ फक़ीहे मिल्लते मय ख्वारगाँ,
आँ इमामे उम्मते बेचारगां।
बेनयाज अज महफिले हाफिज गुजर,
अल-हजर अज गोसफन्दाँ अलहजर।

अर्थात हाफिज जो मदिरा-पान करते थे उसके जादू से होशियार रहो कि उस मदिरा-पान में मदिरा की जगह विष भरा है इसलिए कि अपने पाठकों को-अपने प्रति साहित्यिक श्रद्धा रखने वालों को बेचारगी सिखाते हैं-अधीनता पैदा करते हैं और उन्हें जीने की चेष्टाओं, संघर्षों से दूर ले जाते हैं। वह ऐसे लोगों के इमाम हैं, नेता हैं जो स्वयं कुछ नहीं करना चाहते। हाफिज की इस दुनिया से विमुख होकर गुजर जाओ, उनकी यह महफिल शरीक होने योग्य नहीं है।
इसी पर बस न करते हुए उन्होंने हाफिज पर, सचमुच निम्न कवि, उर्फी को इसलिए प्राथमिकता दी कि वह 'हंगाम-ए-खेज' था-

हाफिजे-जादू बयाँ शीराजी अस्त,
उर्फी-ए आतिश बयाँ शीराजी अस्त।
ईं सूए मुल्के खुदी मरकब जिहानद,
आँ किनारे आब रुकना बाद मानद।
ईं क़तीले हिम्मते मर्दान-ए,
आँ ज रम्जे जिंदगी बेगान-ए।
बादाजन बा उर्फी-ए हंगामा खेज,
जिन्द-ए अज सोहबते हाफिज गुरेज।

अर्थात् शीराज का रहने वाले हाफिज की वाणी में जादू है और शीराज के रहने वाले उर्फी की वाणी आग उगलती है। उसने अपनी मंजिल की तरफ अपनी सवारी को दौड़ाया और रुकनाबाद नदी के तट पर ले गया। पर उर्फी उत्साह-स्फूर्ति अपने और दूसरों में उत्पन्न करना चाहता है, और वह जीवन-संघर्ष से तटस्थ बेनियाज होकर गुजरता है। यदि तू जीवित है तो हाफिज की संगति से दूर भाग, उर्फी के साथ बैठकर शराब पी, उसकी संगति अपना, खुदी की ओर अपने घोड़े को दौड़ा। जो जीवन में कुछ करना चाहता है वह संघर्ष करता है, हंगामा करता है, हलचल मचाता है।

इक़बाल के इन अश'आर पर बहुत ले-दे हुई। हसन निजामी (उनके मित्र) खम ठोककर मैदान में उतर आए। मौलाना असलम जयराजपुरी ने भी इन अश'आर को आपत्तिजनक समझा और उन्हें विशेष प्रेम करने वाले अकबर इलाहाबादी ने भी 'असरारे-खुदी' की उपेक्षा करते हुए उसे अध्ययन-योग्य नहीं समझा और हसन निजामी को लिखा-

"इक़्बाल से अधिक न लड़िए, उनके लिए उन्नति
तथा सुधार की कामना कीजिए।"

और इसके पश्चात् नीचे के अश'आर अपनी विशेष शैली में लिखे–

हजरते इक़्बाल और ख्वाजा हसन,
पहलवानी इनमें, उनमें बाँकपन।
जब नहीं है जोर शाही के लिए,
आओ गुथ जाएं खुदा ही के लिए।
वर्जिशों में कुछ तकल्लुफ ही सही,
हाथापाई को तसव्वुफ ही सही।

'अस्रारे-खुदी' के दूसरे संस्करण (1918) में किसी से शत्रुता न रखने के तरीके (सबसे प्रेम करना) पर अमल न करने वाले हाफिज-विषयक अश'आर त्याग दिए, लेकिन अपने पत्रों में अपने काव्य सिद्धान्त पर बल देते हैं–

"हाफिज पर जो अश'आर मैंने लिखे थे उनका उद्देश्य केवल एक काव्य-सिद्धान्त की व्याख्या तथा विश्लेषण था, ख्वाजा के निजी व्यक्तित्व अथवा उनकी आस्थाओं से सरोकार न था। लेकिन साधारण लोग इस सूक्ष्म अन्तर को न समझ सके और फल यह हुआ कि इस पर बहुत ले-दे हुई। यदि काव्य-सिद्धान्त यह है कि सौंदर्य, सौंदर्य है, चाहे उसका फल लाभप्रद हो या हानिप्रद, तो हाफिज़ विश्व के श्रेष्ठ कवियों में हैं। खैर, मैंने वह अश'आर छोड़ दिए हैं...उर्फी के इशारे से केवल इसके कुछ अश'आर की ओर संकेत अभीष्ट था...लेकिन इस तुलना से (हाफिज और उर्फी की) मैं सन्तुष्ट न था।

"सूफीमत से यदि निष्काम कर्म अभिप्रेत है (और यही अर्थ आरम्भिक युग में इसका लिया जाता था) तो किसी मुसलमान को उस पर आपत्ति नहीं हो सकती। हाँ, जब सूफीमत दर्शन बनने का प्रयास करता है और ईरानी प्रभाव के कारण सृष्टि के तथ्यों एवं परम आत्मा का सूक्ष्म विवेचन कर ब्रह्मज्ञान की दृष्टि प्रस्तुत करता है तो मेरी आत्मा उसके विरुद्ध करती है।"

यूसुफ़ हुसैन ने इस सम्पूर्ण विवाद का विशद अध्ययन और उसका समाधान इस संतुलित दृष्टि में खोजा–

"हाफिज के विषय में इक़्बाल की आलोचना के मूल में जो प्रेरणा काम कर रही थी उसे समझना आवश्यक है। वास्तव में इक़्बाल को भय था कि कहीं ऐसा न हो कि हाफिज की लोकप्रिय वर्णन-शैली के सामने उसका उपयोगितावादी और उद्देश्यमूलक काव्य नीरस, स्वादहीन समझा जाए. इसलिए उसने एक ओर तो आलंकारिक काव्य को अनावश्यक समझा और दूसरी ओर पूर्ण प्रयास किया कि उसके अंश'आर में शक्ति के साथ मोहकता भी हो। इसके लिए उसने बिना संकोच हाफिज की भाषा-शैली का अनुकरण किया-विशेषकर अपनी गज़लों मे। इक़्बाल को यद्यपि अहसास था कि हाफिज की आत्मा उसके शरीर में उतरी हुई है। लेकिन समय की मांग थी कि वह अपनी सकल योग्यताओं को समष्टिगत उद्देश्य के विकास में व्यय कर दे।" (पृ. 19)

यूसुफ़ हुसैन के विचार में इक़बाल अपने काव्य के द्वारा खानक़ाही तसव्वुफ़ जिसमें बाहरी जगत् से सम्बंध तोड़कर एकान्त में रहकर ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के बजाय, बाह्य संसार से सम्बन्ध जोड़कर ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का अहसास करना चाहता था। सूफ़ियों के विचारों को उसने 'अजमी लय' (ईरानी लय) कहा है जो मदहोश करने वाली है-

तासीरे-गुलामी से खुदी जिसकी हुई नर्म,[1]
अच्छी नहीं उस क़ौम के हक़ में अजमी लय।

'असरारे खुदी' के प्रथम संस्करण के छपने के बाद यह धारणा हो गई कि हाफिज़ और इक़बाल एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी हैं। यूसुफ हुसैन इसे स्वीकार नहीं करते और यह हाफिज़ और इक़बाल जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना का कारण बनी। लिखते हैं-

"*यह दृष्टिकोण शरीयत-आधारित है, साहित्यिक और कलात्मक नहीं.... इसकी भी* सम्भावना है की दो कलाकारों के कुछ कार्यों में मतभेद होते हुए भी उनके कुछ अन्य विचारों में समन्वय एवं एकता के गुण विद्यमान हों, और दोनों एक-दूसरे से इतने अधिक दूर न हों जितना कि आमतौर पर समझा जाता है।" (पृ. 26)

इसके पश्चात् यूसुफ हुसैन दोनों कलाकारों के समान मूल्यों का वर्णन करते हुए लिखते हैं-

"हाफिज़ और इक़बाल के यहाँ प्रेम कलात्मक प्रेरणा है। हाफिज़ का प्रेम काल्पनिक एवं वास्तविक है और इक़बाल का सोद्देश्य------इक़बाल का प्रेम गत्यात्मक शक्ति (या प्रेरणा) से क्रान्ति उत्पन्न करना चाहता है। हाफिज़ के समक्ष कोई समष्टिगत उद्देश्य न था। वह प्रेम के द्वारा हर्षोल्लास अभिव्यक्त करता है, जो काफी निजी है।"

मेरे विचार में यूसुफ़ हुसैन इस प्रकार हाफिज़ और इक़बाल के मध्य प्रेम का सेतु बांधकर आलोचनात्मक दृष्टि से कोई सार्थक इजाफा नहीं कर सके हैं। इक़बाल के यहाँ इश्क़ (प्रेम) उनके सुनियोजित 'फलसफ़-ए खुदी' (आत्म-दर्शन या स्व-दर्शन) का एक अंग है और प्रारम्भिक युग की कविताओं में और अन्तिम युग की कुछ ग़ज़लों के अतिरिक्त सामाजिक उद्देश्य के अधीन है। इसके विपरीत हाफिज़ का प्रेम, वली औरंगाबादी के मतानुसार-

शग़ल बेहतर है इश्क़ बाजी का,[2]
क्या हक़ीक़ी ओ क्या मजाज़ी का।

की अवस्था से आगे नहीं जा सकता है।

1. जिस जाति या राष्ट्र की गुलामी के कारण खुदी (अहं) क्षीण हो गई है, उसे ईरानी लय (संगीत, तसव्वुफ) सुनाना अच्छा नहीं, वह और बेसुध हो जायेगी।
2. इश्क करने का शगल अच्छा है, चाहे वह इश्क हकीकी हो या इश्क मजाजी (पारलौकिक हो या लौकिक)।

इक़बाल और हाफिज़ के तुलनात्मक अध्ययन का वास्तविक क्षेत्र हाफिज़ की काव्य-शैली है, जिसका इक़बाल ने अपनी फारसी कविता में अधिक अनुकरण किया है। यूसुफ़ हुसैन का यह विवेचन अति उचित है-

"मैं समझता हूँ हिन्दुस्तान में फारसी भाषा में कविता रचने वालों में इक़बाल को तरजीह प्राप्त है। उसने भारतीय शैली से हटकर हाफिज़ की वर्णन-शैली को अपनाने का प्रयत्न किया...अपनी कविता के वर्ण्य-विषय की सीमा तक इक़बाल मौलाना रुम और दूसरे चिन्तकों की ओर आकृष्ट हुए लेकिन उसने अपने विचारों को हाफिज़ की वर्णन-शैली में प्रस्तुत किया, ताकि वह अपने संदेश के प्रभाव को बढ़ा सके। इसलिए 'पयामे-मशरिक़' और 'ज़बूरे-अजम' में साफ नज़र आता है कि उनमें भाव तो उनके अपने नहीं, लेकिन उद्देश्य में जो मस्ती और गतिशीलता है वह हाफिज़ की देन है----मेरा विचार है कि भारत के किसी फारसी कवि के यहाँ हाफिज़ का कला-शिल्प इतना स्पष्ट नहीं जितना कि इक़बाल के काव्य में दिखाई देता है। वह प्रथम हिन्दुस्तानी कवि हैं जो भारतीय प्रचलित शैली को त्याग कर हाफिज़ शीराज़ी की ओर आकृष्ट हुए।"

अतः इस ग्रन्थ के पाँचवे अध्याय - 'मुहासिने-कलाम' (काव्य की विशेषताएँ) में यूसुफ़ हुसैन ने दोनों आत्मज्ञानी कवियों के काव्य की कलागत समानताओं का विशद वर्णन किया है। इससे पूर्व चौथे अध्याय में दोनों के ज्ञान व प्रतिष्ठा, तथा उत्प्रेरक भावों का परीक्षण करते हुए लिखते हैं-

"वाहृय रुप में मालूम पड़ता है कि हाफिज़ के यहाँ सुख-चैन, हर्षोल्लास के अतिरिक्त कुछ नहीं, लेकिन यह विचार सतही है। उसके भाव व कल्पना की तह में उतरिए तो शान्ति के नीचे हलचल तथा गतिमान लहरें उमड़ती दिखाई पड़ती हैं। (पृ. 267)

बया ता गुल बर अफशा नेम व मै दर सागर अन्दाज़ेम,
फलक रा सक़्फ बिशिगाफेम व तरहे नौ दर अन्दाज़ेम।
अगर ग़म लश्कर अंगेज़द कि ख़ूने आशिक़ाँ रेज़द,
मन व साक़ी बहम साज़ेम व बुनियादश बर अन्दाज़ेम।

गदाए मैकदः अम लेक वक़्ते मस्ती बीं,
कि नाज़ बर फलक व हुक्म बर सितारा कुनम्।

आक़िब्बत मंजिले मा वादिए ख़ामोश नेस्त,
हालिया ग़लग़ला दर गुम्बदे अफलाक अन्दाज़।

अर्थात आ ताकि हम फूल बखेरें और शराब सागर (प्याला) में भरें। आकाश की छत को हम तोड़ डालें और एक नवीन रुप में डालें। पीड़ा अपना दल लेकर आए कि अपने प्रेमियों का रक्त बहा दें। मैं और मधुबाला आपस में लय-ताल देंगे और उसको विनष्ट कर देंगे।

मैं मधुशाला का फ़कीर हूँ लेकिन देखो कि जब मुझ पर मस्ती छा जाती है तो मैं आकाश पर नाज़ करता हूँ और सितारों पर कलम चलाता हूँ।

+ + +

अन्ततः हमारी मंज़िल शून्य की ओर चले जाना है और अब जो छन्द हमारे पास हैं उनसे क्यों न हम आकाश में तहलका मचा दें।

यह सब इक़्बाल के प्रिय अश'आर हैं जिन्हें उन्होंने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर उद्धृत किया है।

'हाफिज व इक़्बाल' के द्वारा न केवल यूसुफ़ हुसैन की इक़्बाल के विषय में सूक्ष्म दृष्टि का प्रमाण मिलता है बल्कि इस बात का अन्दाजा भी होता है कि हाफिज के सम्बंध में इस सूक्ष्मता के साथ उनसे पूर्व न उर्दू में लिखा गया, और प्रोफेसर नजीर अहमद के मतानुसार, न फारसी में। इस ग्रन्थ की भूमिका में वह लिखते हैं-

"डॉ. यूसुफ़ हुसैन का ईरान वालों पर इस दृष्टि से अहसान है कि उन्होंने उनके राष्ट्रकवि की महानता को इस चमक-दमक के साथ स्वीकार किया जिसका वह अधिकारी था। इस दृष्टि से हाफिज और इक़्बाल का फारसी में अनुवाद किया जाना अतिआवश्यक है, ताकि ईरानियों को इस पुस्तक से समुचित रुप में लाभान्वित होने का अवसर मिले। इस प्रकार एक ओर, उन्हें हाफिज का काफी परिचय प्राप्त हो सकेगा और दूसरी ओर हिन्दुस्तान के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक कवि इक़्बाल को समझने का अवसर मिलेगा। इससे एक बड़ा लाभ यह भी होगा कि यह पुस्तक ईरान में आलोचनात्मक प्रवृति उजागर करने में सहायक सिद्ध होगी।"

इस पुस्तक में भी 'रुहे-इक़्बाल' की भाँति यूसुफ़ हुसैन की शैली विषयपरक आलोचना की है, यानी स्वयं दोनों कवियों के अश'आर की व्याख्या करके उनके वर्ण्य विषय पर विचार-विमर्श किया है। भाषा के सृजनात्मक प्रयोग में इन महानुभवों ने जो सफलताएं अर्जित की हैं उन्हें उजागर करने का प्रयास किया है। इधर-उधर अपनी ऐतिहासिक दृष्टि से उन्होंने हाफिज के जीनव के विषय में अनुमान भी लगाए हैं जैसे 'लूलियाने-शीराज' यानी शीराज की सुंदरियों में से एक के साथ उनका हार्दिक लगाव और अन्त में उसके साथ वैवाहिक सूत्र में बँधना। ग़ालिब ने भी ग़ज़ल की शैली में 'लूलियाने-देहली' यानी दिल्ली की सुंदरियों में से एक का शोकालाप 'हाय-हाय!' की तुकबन्दी में रचा है। हाफिज की कम-से-कम एक ग़ज़ल और कुछ फुटकर अश'आर में इस 'सुन्दरी' की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है। इस प्रकार विषयगत आलोचना के साथ यूसुफ़ हुसैन, ग़ालिब हों या हाफिज़ उनके निजी जीवन की खिड़कियों से कभी-कभी झांक लेते हैं। वह उस युग की भी उपेक्षा नहीं करते जिसमें उनके कवि ने गहरी सांसे ली है, लेकिन युग पर कवि को तरजीह देते हैं। वह हाफिज और ग़ालिब जैसे कवियों के वैयक्तिक जीवन की वकालत नहीं करते, उनके कला-सौष्ठव के आलोचक हैं! तात्पर्य यह कि आलोचना में उनकी कार्यप्रणाली, विषयगत, आत्मकथात्मक तथा ऐतिहासिक है। व्यक्ति का वुजूद और उसका कला-सौंदर्य प्रत्येक दशा में इन तीनों पर छाया रहता है।

4

ग़ालिबयात

(ग़ालिब विषयक साहित्य)

मैं इस से पूर्व लिख चुका हूँ कि जहाँ तक उर्दू काव्य का सम्बन्ध है, यूसुफ़ हुसैन का संबंध उस पीढ़ी से था जो ग़ालिब और इक़्बाल की गोद में पली थी । इन दोनों कवियों में उनकी रुचि विधार्थी-काल से थी । ग़ालिब से उनकी रुमानी कल्पना की परितृप्ति होती थी और इक्बाल से उनकी इस्लामी भावना को परितोष मिलता था ।

ग़ालिब के काव्य पर उन्होंने विस्तृत रुप से विचार करना 'उर्दू ग़ज़ल ' (1942) से आरम्भ कर दिया था । उनकी ग़ालिब विशेषज्ञता के लिए उर्दू ग़ज़ल के ये उद्धरण यथेष्ट हैं -

"ग़जल में वाह्यानुभव भी आन्तरिक रंग धारण कर लेता है।" (43)
इसके पश्चात् उस काव्य की व्याख्या के हवाले से उन्होने ग़ालिब के ये अश'आर नक़्ल किए है -

ख़्याले जलवा-ए गुल से खराब हैं मैकश[1]
शराब खाने की दीवारो-दर में खाक नहीं

दिल से उठा लुत्फे-जलवा हाए म'आनी,
ग़ैर गुल आईने-ए बहार नहीं है

ग़मे फिराक़ में तकलीफे-सैर बाग़ न दो,
मुझे दिमाग़ नही खन्दा [2] हाए बेजा का

जलवा-ए गुल देख रोए यार याद आया असद,
जोशिशे-फसले-बहारी इश्तियाक् अंगेज् है

मुझे अब देखकर अब्रे शफक़ आलूद याद आया,
कि फुर्क़त में तेरी आतिश [3] बरसती गुलिस्तां पर

1. शराब पीने वाले, 2. मुस्कान, 3. आग

आग़ोशे गुल कुशादा बराए विदा है,
ए अन्दलीब [1]! चल कि चले दिन बहार के

करता है बस कि बाग़ में तू बेहिजाबियां [2],
आने लगी है निकहते-गुल 1[3] से हया मुझे

उर्दू ग़ज़ल की भूमिका से ही उन्होंने प्रथम बार 'नुस्ख़-ए हमीदिया' की दो ग़ज़लों से, जिनकी बाद के आलोचकों में बहुत चर्चा रही, विस्तृत उद्धरण दिए हैं -

"कवि जब जीवन को समझने के लिए अपने प्रिय या अप्रिय को केन्द्र में रखता है तो गा उठता है -

अफ [4] सुर्दगी में है फर्याद बेदिलाँ तुझ से,
चराग़े-सुब्ह व गुले-मौसमे-ख़ज़ा तुझ से ।
चमन-चमन गुले-आईना दर किनारे-हवस,
उमीद महवे तमाशा-ए गुलिस्तां तुझ से ।।
असद! ब मौसमे-गुल दर तलिस्मे [5] कुंजे-क़फस [6],
ख़िराम [7] तुझ से, सबा तुझ से, गुलिस्ताँ तुझ से

"और जब अपने असितत्व के द्वारा सृष्टि की रंग-लीला देखना चाहे तो कहता है -

दर्से उनवाने तमाशा ब तग़ाफुल ख़ुशतर
है निगहे-रिश्त-ए शीराज़-ए मिज़गाँ [8] मुझ से।
असरे-आबला से जादः [9] ए सहरा-ए [10] जुनूं,
सूरते रिश्त-ए गौहर है चराग़ा मुझ से ।
निगहे-गर्म से इक आग टपकती है 'असद',
है चराग़ाँ ख़स-व-ख़ाशाके गुलिस्ताँ मुझ से

"ग़ालिब के यहाँ प्राकृतिक सुषमा के अवलोकन के साथ एक और नवीन विचार मिलता है जो इक़बाल से पूर्व शायद ग़ालिब ने ही प्रस्तुत किया है । ग़ालिब ने भी प्रकृति का अवलोकन अन्तर्शा व अन्तर्प्रेरणा के द्वारा किया । उसने केवल अवलोकन ही नहीं किया, बल्कि प्रकृति के वाह्य रुप के अध्ययन का उद्देश्य केवल उसकी उपासना को नहीं समझा,

1. बुलबुल, 2. बिना पर्दा, 3. पुष्प-गंध, 4. उदासी, 5. जादू, 6. कैद (नीड) का एकान्त तन्हाई, 7. मस्तानी चाल, 8. पलक, 9. मार्ग, 10. जंगल

बल्कि उस पर अधिकार पाने तथा उसे बदलने को भी समझा ताकि मनुष्य की आकांक्षाओं की पूर्ति का साधन बने । " (पृ. 64)

तमाशाए गुलशन, तमन्नाए चीदन [1]
बहार आफरीना [2] । गुनहगार हैं हम ।
न जौक़े गरेबाँ [3], न परवाए दामाँ
निगाह आशना-ए गुल-व-ख़ार हैं हम

"तर्क बुद्धि की भाषा है, सृजनावस्था की भाषा प्रतीकात्मक व संकेतात्मक है .... ग़ालिब की साहित्य के विषय में कितनी गहन तथा व्यापक दृष्टि थी।"

फ़िक्र मेरी गौहर अन्दोज़, इशाराते क्सीर [4]
किल्क [5] मेरी रक़्म आमोज़ [6] , इबाराते क़लील ।
मेरे इबहाम पे होती है तसद्दुक़ [7] तौज़ीह [8] ,
मेरे अजमाल [9] से करती है तराविश [10] तफसील

1. मदखाने (मधुशाला, संसार) के दर-व-दीवार में कुछ भी नहीं है, शराबी को उसकी चिन्ता नहीं। वह तो काल्पनिक लोक में विचरण कर आत्मविभोर हो रहा है ।
2. आनन्दमय जगत् का अस्तित्व (वुजूद) तभी तक है जब तक ईश्वर का बोध रहता है। बिना गुल के आईना के बहार की क्या शोभा ?
3. मैं चिर वियोग से पीडित हूँ, मुझे बाग़ की सैर (मिलन) के लिए निमंत्रित न करो। मुझे व्यर्थ का मजाक़ पसंद नहीं ।
4. फूल को विकसित देखकर ग़ालिब को महबूब का हुस्न याद आ गया। वसंत ऋतु में प्रेम का आवेश (जोश) उत्सुकता को जागृत करता है।
5. रंग-रंजित बादलों को देखकर मुझे एक बात याद आई। तेरे विरह के फलस्वरुप ही बाग पर आग बरसती है।
6. जैसे विदाई के समय हम बाहें फैलाकर मिलते हैं, वैसे ही फूल खिलकर बहार की विदाई का संकेत दे रहे हैं। ए बुलबुल! चल, बहार के दिन गुजर गये।

1. श्रेष्ठ, चुनी हुई, 2. शाबाश, सराहनीय, 3. कुरते कमीज का गला, 4. अधिक, 5. लेखनी, 6. लिखने वाली, 7. कुर्बान होना, 8. व्याख्या, विश्लेषण, 9. सौंदर्य, 10. बहना, टपकना

7. परम सत्ता ने अपना पर्दा (हिजाब) हटा दिया है, अपने को अभिव्यक्त किया है। फूल की महक से मुझे हया आती है - मन द्रवित हो जाता है।

8. उदासीनता में डूबकर ए निर्दयी सब तुझी से फरियाद कर रहे हैं, आशा दीप, गुल, पतझड़ की सुन्दरता तुझ से ही है ।

   प्रत्येक बाग में फूल का आईना हवस से भरा है। इस बाग की शोभा देखने के लिए तुझ से ही आशा की जा सक्ती है।

   ग़ालिब कहते हैं मोहमाया की जादूगरी, जगत् की रंगीनी कुछ नहीं, सब कुछ तू ही तू है। यह मंद चाल, प्रात : समीर (हवा), बाग़ ये सब तेरी ही जादूगरी हैं ।

9. इस परिर्वतनशील जगत् का उचित ज्ञान तब प्राप्त होता है जब स्मृति की स्थति हो। आत्मा यहाँ आकर अपने मूल स्थान को विस्मृत कर देती है, वह पलकों से परमसत्ता से सम्बंध जोड़ सकती है। संसार उस परमसत्ता का ही संकेत है।

   तेरे जुनूं, प्रेम के जंगल में घूमने से मेरे पैरों में जो छालें पड़ गये हैं, वे मोती, दीपक की भाँति चमकते हैं। इन छालों से ही तेरे साथ रिश्ता जुड़ता है।

   ग़ालिब कहते हैं मेरी गर्म नजर से - उत्सुकता, इच्छा से आग बरसती है और उसी से बाग़ में आग लग गई है - चरागां हो रहा है - कण-कण उसी की ज्योती से रोशन है।

10. मैं फूलों को देखता हूँ और उन्हें चुनने की तमन्ना करता हूँ। ए बहारों को पैदा करने वाले! इसमें मेरा क्या दोष है? न हमें अपने गरीबा की परवाह है, न दामन का कोई ख्याल है, हमनें फूलों-कांटों से दोस्ती की है। उनकी नजर को पहचाना है।

11. मेरा चिन्तन गहरा है, संकेत, प्रतीक भी अधिक हैं। मेरी लेखनी लिखने योग्य है, लेकिन विषय कम हैं। मेरे अस्पष्ट विचारों पर विश्लेषण निछावर होता है और यह अभिव्यक्ति मेरे सौंदर्य के कारण हैं।

1. ग़ालिब और आहंगे-ग़ालिब

यूसुफ़ हुसैन की ग़ालिब-विशेषज्ञता का आरम्भ, जिसकी पराकाष्ठा 'ग़ालिब और आहंगे-ग़ालिब' (1968) नाम ग्रन्थ में मिलती है, 'उर्दू ग़ज़ल' की भूमिका से हो गया था। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उन्होंने 'नुस्खए हमीदिया' का भी पूर्ण अध्ययन किया था,

और उसके 'तर्ज़ बेदिल' के अश'आर को भली-भाँति समझा था, इसलिए कि उसमें लिखे कुछ अश'आर का सौदर्य वर्णन करते हुए उन्होंने बिना संकोच प्रयोग किया है।

'ग़ालिब और आहंगे-ग़ालिब' उन्होंने 'ग़ालिब शताब्दी' के उपहार-स्वरुप प्रस्तुत किया। ग्रन्थ का प्रारम्भ भूमिका के इन शब्दों से होता है।

ग़ालिब पर अब तक बहुत कुछ लिखा जा चुका है, इसके बावजूद यह महसूस होता है कि उनके व्यक्तित्व और काव्य के विषय में सम्पूर्ण बात अभी तक किसी ने नहीं की। हमारे कुछ आलोचकों ने ग़ालिब के काव्य को समझने के लिए सामाजिक परिवेश के विश्लेषण पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है मानो ग़ालिब को समझने के लिए वही असली चीज हो। यह और स्वयं उनका काव्य गौण अर्थ रखता हो। यह आलोचक कविता के केवल उस स्वरुप को स्वीकार करते हैं जिस सीमा तक वह वाह्य सामाजिक परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करे, लेकिन वे यह बात भूल जाते हैं कि वाह्य यथार्थ जब कविता का अंग बनता है तो उसका वाह्यरुप बहुत कुछ परिवर्तित हो जाता है। कवि की शैली तथा उसका शब्द-चयन उसकी आन्तरिक अवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। यही कारण है कि एक ही युग तथा एक ही वातावरण के दो कवियों की यह आन्तरिक अवस्था इतनी पृथक होती है कि उन्हें एक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। ग़ालिब और जौक़ इसके अच्छे उदाहरण हैं।"

उपर्युक्त उद्धरण न केवल ग़ालिब के विषय में यूसुफ़ हुसैन की साहित्यिक प्रवृति को प्रकट करता है बल्कि इस बात का भी पता देता है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से वह साहित्यिक आलोचना के किस स्तर से बात कह रहे हैं। यह चौथे व पाँचवें दशक की उर्दू आलोचना के विरुद्ध प्रतिक्रिया प्रस्तुत करता है जिससे कुछ प्रगतिशील आलोचकों ने ग़ालिब और इक़बाल जैसे काव्य-महारथियों को परखना आरम्भ किया था और जब वह उनकी सामाजिक आलोचना की सुहढ़ पकड़ में नहीं आते थे तो उनके काव्य को प्रगतिशील और अप्रगतिशील -दो भागों में विभक्त करने का प्रयास किया था। यूसुफ हुसैन की आलोचना का रुख विषयपरक है; यानी स्वयं 'रचना' के भावार्थ की ओर, "प्रत्येक श्रेष्ठ कवि या कलाकार अद्वितीय होता है उसकी यह अद्वितीय रुचि उसे चिन्तन एवं अनुभूति के सचेतन तथा अचेतन स्रोतों से सजीवता प्राप्त करता है।" (पृ.11, भूमिका)

ग़ालिब पर यूसुफ हुसैन का यह प्रामाणिक ग्रन्थ पाँच अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में ग़ालिब के युग, राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का विवेचन किया गया है। इस अध्याय के लिखने में उन्होंने अपनी पूर्ण इतिहासज्ञता का भरपूर लाभ उठाया है, जो प्रायः साहित्य-आलोचकों के यहाँ क्षीण होती है। ग़ालिब के जीवन की परिस्थितियों का वर्णन करते हुए उन्होनें विशेष रुप में इस बात की ओर इशारा किया है कि ग़ालिब ने अपने पत्रों में अपनी ननिहाल वालों की ओर से जो मौन साधा है वह सोचा-समझा है, अतः अनुसन्धान-योग्य है। इस प्रकार ग़ालिब की वंश-परम्परा के विषय में उन्होंने नया शोशा छोड़ा है। लिखा है कि ग़ालिब के पूर्वज क़ाफी समय तक बदखशाँ में निवास करते रहे और बदखशाँ की आबादी वंश (नसल) की दृष्टि से मिश्रित है। यहाँ प्राचीन काल से अफग़ानिस्तान, उज़बक तथा ताजीक लोग बसे हैं, जिनमें पारस्परिक विवाह प्रचलित था।

अतएव ग़ालिब के वंश में अफ़ग़ानी रक्त का सम्मिश्रण विश्वसनीय है। क़ाज़ी अब्दुल वदूद ने भी उनके मत का समर्थन किया है।

ग़ालिब की मानसिक संरचना के विषय में उनका अनुमान ठीक है कि वह अत्यधिक नवीनता-प्रिय थे और उनकी सबसे बड़ी विशेषता 'काल्पनिक चिन्तन' की अथाह सामर्थ्य थी। जब इसमें 'ग़मे-इज़्ज़त' और 'ग़मे-रोज़गार' शामिल हो जाते हैं तो उनकी कविता दुगनी कान्तिमय हो जाती है। संयुक्त रुप में यह कल्पना गत्यात्मक है, इसलिए ग़ालिब के यहाँ उपमा-रुपक का वैचित्र्य है और शब्द-योजना में नवीनीकरण है।

ग़ालिब पेशावर दार्शनिक नहीं थे, लेकिन उनकी दृष्टि में गहराई थी, इसलिए जो बात करते थे उसमें एक दार्शनिक भव्यता होती थी। 'बिजनौरी' ने तो उन्हें इसी कारण प्रथम श्रेणी के दार्शनिकों में प्रतिष्ठित किया है। यूसुफ हुसैन केवल उनकी दार्शनिक कविता पर सन्तोष करते हैं। उनके मत में "ग़ालिब ने अपनी अस्तित्ववादी भावना सांसारिक वैराग्य के (संसार-त्याग) साथ नहीं मिलाया है, वरन् इसके विपरीत यह शिक्षा दी है कि आकांक्षाओं को बढ़ाओ, इनके बिना जीवन में आनन्द नहीं।" (पृ. 324)
ग़ालिब शाश्वत आकांक्षाओं तथा इच्छाओं के कवि हैं -

नफ़्स न अंजुमने-आर्ज़ू से बाहर खींच,
अगर शराब नहीं इन्तिज़ारे साग़र खींच[1]

यूसुफ़ हुसैन ने ग़ालिब के काल्पनिक चिन्तन पर बहुत बल दिया है "जिसकी सर्वोतम अभिव्यक्ति रुपकों में हुई है। हम उन्हें उर्दु भाषा का सबसे बड़ा रुपककार कह सकते हैं।"

ग़ालिब की कविता की एक और प्रमुख विशेषता, यूसुफ हुसैन के विचार में, 'पिरौड़ी' है। "उनकी सचेत कल्पना एक ही समय में यथार्थ के विभिन्न रुपों तथा उसकी विभिन्न परतों को नहीं देखती है जिनका तार्किक चिन्तन अपेक्षा करता है"। वह शिया भी थे और सुन्नी भी...एकेश्वरवादी थे लेकिन मूर्तियों को काबा से निकाले जाने का उन्हें खेद था... काबा को अपने पीछे और गिरजा को अपने आगे देखने में उन्हें कोई संकोच नहीं। इसमें भी संकोच नहीं कि यदि ब्राहमण मंदिर में मरे तो उसे काबा में दफ़्न करवाएँ, शर्त यह कि वह अपने धर्म का पक्का हो, शोकालय की शमआ को (दीपक) प्रकाशित करने के लिए बिजली की खोज करते हैं... यह हैं ग़ालिब जो हर रंग में सामने आते हैं और हर अन्दाज़ से तलाश करते हैं, जिनकी एक बात से सौ बातें निकलती हैं।" (पृ. 224-25)

'ग़ालिब और आहंगे-ग़ालिब' नामक ग्रन्थ कई प्रकार से ग़ालिब-विषयक साहित्य में मील के पत्थर का महत्त्व रखता है। यह अन्य बात है कि उनका यह ग्रन्थ साहित्य अकादेमी के समीक्षकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट न कर सका।

1. यदि शराब नहीं मिलती तो उसके इन्तजार में मग्न रह। आर्ज़ुओं की अंजुमन से आत्मा को पृथक मत कर।

2. अन्तर्राष्ट्रीय ग़ालिब सेमिनार (आलेख-संग्रह)

अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार में जो निबन्ध पढ़े गए थे उनको दो भागों में –एक उर्दू, दूसरा अंग्रेजी में प्रकाशित किया गया। दोनों का सम्पादन यूसुफ़ हुसैन ने किया था। उर्दू वाले भाग में उनका एक महत्वपूर्ण निबन्ध 'ग़ालिब के काव्य में गत्यात्मक भावना' भी सम्मिलित है। यह एक प्रकार से उनके भावी महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'ग़ालिब व इक़बाल की मुतहर्रिक जमालयात' का पूर्वाभास है।

काफी समय से ग़ालिब के आलोचकों में एक चुभन रही है कि ग़ालिब जैसे महाकवि को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करने के लिए आवश्यक है कि उनके काव्य में दार्शनिक तत्वों की खोज की जाए। यूसुफ़ हुसैन भी इक़बाल के दर्शन की सूक्ष्म विवेचना के पश्चात् ऐसे तत्वों की खोज में प्रयत्नशील रहे। इसके लिए उन्होनें 'नुस्खए-हमीदिया' भी खंगाला और विशेष रुप से ग़ालिब के फारसी-काव्य का आद्योपान्त गहराई से अध्ययन किया।

ग़ालिब के यहाँ ऐसी कोई चिन्तन-पद्धति नहीं मिलती जो मात्र उन्हीं के लिए प्रमुख हो। इसलिए उनके काव्य सागर का मन्थन करने के पश्चात् वह उन कुछेक आलोचकों तक पहुचें जिनका वर्णन उपर्युक्त निबन्ध में प्रथम बार किया गया।

"ग़ालिब ने अपने काव्य में 'शौक', 'तमन्ना' और 'आर्जू' का बार-बार वर्णन किया है।"

"कुछेक ग़ज़लें गाति तथा शक्ति के भावों में डूबी हुई हैं जिनसे जीवन के प्रति विश्वास प्रकट होता है।" जैसे –

> बया कि क़ायद-ए आसमां बिगरदानेम
> क़ज़ा ब गर्दिश-ए रतले गराँ बिगिरदानेम।

अर्थात् ताकि हम आकाश के पुराने सिद्धान्तों को बदल दें और समय-प्रकृति के आदेश को शराब से भरे जाम की गर्दिश से बदल दें।

"ग़ालिब की उपमाओं-रुपकों की ताजगी व शक्ति से भी उनकी गतिशील भावानाएँ स्पष्ट होती हैं।"

"उनके यहाँ गति, आकुलता एवं विवशता अभीष्ट थे।"

इस निबन्ध के यही मूल भाव थे, जिन्हें उन्होंने ग़ालिब की गतिशील भावना कहा है, और जिन पर अक्तूबर 1977 में 'ग़ालिब अकादमी' के अनुरोध पर दो व्याख्यान दिए, जो उनकी मृत्यु के बाद 1979 में 'ग़ालिब और इक़बाल की मुतहर्रिक जमालयात' के शीर्षक से प्रकाशित हुए। " इस ग्रन्थ में जहाँ तक ग़ालिब का सम्बन्ध है अपने उपर्युक्त निबन्ध से बहुत लाभ उठाया है। मुतहर्रिक जमालयात (गत्यात्मक सौन्दर्य) एक दिलचस्प प्रयोग है जो उन्होनें सम्भवतः उर्दू में प्रथम बार प्रयुक्त किया हैं। वह यहाँ तक 'गत्यात्मक भावना' तक पहुँचे हैं। गत्यात्मक भावना युग की माँग भी थी। आधुनिक युग में मृत पूरब की रगों में स्वस्थ रक्त दौड़ने के लिए आवश्यक था कि ग़ालिब व हाफिज़ जैसे 'अस्तित्ववादियों' के यहाँ गत्यात्मक तथा अनुकूल भावों का अन्वेषण किया जाए। अतः तसव्वुफ को गत्यात्मक

व अगत्यात्मक भागों में विभक्त किया गया। भक्ति की भी गत्यात्मक कल्पनाएं की गई हैं। ग़ालिब की मूल दृष्टि अस्तित्वादी है, यह और बात है की अधिक निजी होने से उनके यहाँ कभी-कभी 'अहम्' की आहट भी मिल जाती है। ग़ालिब और हाफिज़ को इक़बाल के साथ नहीं बिठाया जा सकता।

:. ग़ालिब और इक़बाल की मुतहर्रिक जमालयात

1979 में यूसुफ़ हुसैन ने ग़ालिब के समक्ष अपनी श्रद्धा 'ग़ालिब और इक़बाल की मुतहर्रिक जमालयात' के रुप में प्रस्तुत की। यह उन दो व्याख्यानों का संकलन है जो उन्होंने 1977 में ग़ालिब अकादेमी, दिल्ली के निमंत्रण पर दिए थे, जो पुस्तकाकार रुप में उनके निधन (21 फरवरी 1979) के बाद प्रकाशित हुए। उसकी भूमिका उनकी अंतिम रचना थी जो 4 फरवरी 1979 को मृत्युरोग में ग्रस्त होने से कुछ घंटे पूर्व लिखी थी।

1979 तक यूसुफ़ हुसैन ग़ालिब और इक़बाल पर जो कुछ लिखना चाहते थे, लिख चुके थे। इसलिए उन्होंने उसकी भूमिका में खुले दिल से इस बात को स्वीकार किया है कि "उनकी तैयारी में मैंने अधिकांश अपनी ही कृतियों से लाभ उठाया है। इसके अतिरिक्त लिखते समय जो नवीन विचार मन में आए हैं उन्हें लिख दिया।"

ग़ालिब और इक़बाल का यह तुलनात्मक अध्ययन कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। एक तो इस कारण कि यह एक ऐसे व्यक्ति की लेखनी का स्मरण है जिसने एक उम्र उन साहित्यिक दिग्गजों की संगति में व्यतीत की थी जो उन दोनों के काव्य को मंत्र (वज़ीफा) समझकर जीवन-भर पढ़ता रहा, और उनके काव्य से न केवल आनन्दित हुआ बल्कि वह उनके जीवन पर भी छा गया था। प्रत्येक समय तथा परिस्थिति में इन्हीं दो कवियों के किसी शे'र से जीवन की समस्याओं का समाधान खोजता था। यद्यपि वह आशुकवि नहीं थे, लेकिन इन दोनों कवियों के अश'आर का भावार्थ हर पल मन में विद्यमान रहता।

प्रथम व्याख्यान जो "हैयत व उसलूब की तख्ली की तवानाई" (रुप-विधान की सृजन-शक्ति) के शीर्षक से दिया गया था, ग़ालिब व इक़बाल के तुलनात्मक अध्ययन पर अवलम्बित है, जिसमें दोनों के गतिशील लक्षणों-बिम्बों का विवेचन है। उनका यह विचार सत्य है कि ग़ालिब अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित होने के बावजूद बुनियादी तौर पर हरकत की बरकत से परिचित हैं। इसीलिए आर्ज़ू व तमन्ना के इन्सान हैं। उनकी 'तमन्ना' की न सीमा है, न हिसाब ; इस अध्याय में यह उच्च साहस कहाँ मिलता है-

है कहाँ तमन्ना का दूसरा क़दम या रब,
हमने दश्ते-इमकां को एक नक्शे पा पाया।। 1 ।।

दरअसल यदि कोई विश्लेषण करने बैठे तो उसका (ग़ालिब का) संपूर्ण काव्य गतिशील लक्षणों और प्रतीकों की दास्तान मालूम होता है। "इक़बाल के विपरीत ग़ालिब के समक्ष

1. हम सम्भाव्य के जंगल तक पहुँच गये हैं, मेरी आकांक्षा यहीं तक नहीं रुकती, वह और आगे जाना चाहती है।

सिवाय निजी अनुभवों के कोई समष्टिगत उद्देश्य न था, फिर भी उनका मस्तिष्क सक्रिया तथा कर्मशील था।"

ख़ुशी ख़ुशी को न कह, ग़म को ग़म न जान 'असद'
क़रार दाखिल अजज़ाए-कायनात [1] नहीं।।2।।

ग़ालिब के काव्य के अध्ययन का यह अनुमान और अधिक सार्थक हो जाता है जब यूसुफ़ हुसैन उनके काव्य-शिल्प तथा प्रयोगों से गति-कर्म को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-

"शब्द 'मौज' के प्रयोग का आधिक्य ग़ालिब की सक्रिय बुद्धि की ओर संकेत करता है- मौजे-गुल, मौजे-शराब, मौजे-सबा, मौजे-सराब, मौजे-शफक़, मौजे-खूं, मौजे-खिरामे-यार, मौजे-रंग, मौजे-बहार, मौजे-रफ्तार, मौजे-मुहीत बेखुदी, मौजे-निगह, मौजे गिरया, मौजे-गौहर, मौजे-गर्दबि-हवा, मौजे-दूदहः ए शोले-ए आवाज, मौजे-बोरिया, मौजे-रिमे-आहू, मौजे-रेग, मौज-ए सब्ज़ा, मौजे-तपिशे-जुनू आदि।" 'मौज' शब्द यूसुफ़ हुसैन के विचार में ग़ालिब की कल्पना-शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

अपनी कृति के शीर्षक का स्पष्टीकरण करते हुए लिखते हैं- "गतिशील सौंदर्य से मेरा अभिप्राय काव्य में ऐसे रुपकों और लाक्षणिक प्रयोगों से है जिनसे गति व प्रयोग की अनुभूति हो और यह अनुभूति सुंदर हो।"(पृ.72)

कार्यत्री कल्पना साहित्य की आलोचना का एक सुपरिचित मुहावरा है। इक़बाल ने 'गत्यात्मक तसव्वुफ'और 'खानक़ाही तसव्वुफ' में गति तथा कर्म के आधार पर भेद किया हैं। लेकिन 'गतिशील सौंदर्य' सम्भवतः प्रथम बार यूसुफ़ हुसैन ने प्रयुक्त किया है और उसका कारण भी स्पष्ट किया है।

ग़ालिब के यहाँ तो गतिशील सौंदर्य के तत्व खोजने में यूसुफ़ हुसैन को अत्यधिक विश्लेषण करना पड़ा, लेकिन जहाँ तक इक़बाल का सम्बन्ध है यह उनके दर्शन में स्वयं विद्यमान है। चूँकि इक़बाल चिन्तन में उनका दार्शनिक सौंदर्य उनके 'फलसफा-ए ख़ुदी' के अधीन है। इक़बाल के दृष्टिकोण से हम अर्थपूर्ण सौदर्यमय रचना उस कृति को कह सकते हैं जिससे 'ख़ुदी' को बल मिलता हो। चूँकि ग़ालिब के काव्य में समष्टिगत उद्देश्य का अभाव है, इसलिए यह यूसुफ़ हुसैन की ग़ालिब-साहित्य में अभिवृद्धि है कि ग़ालिब के चिन्तन में ऐसे अनुकूल तत्व उनके काव्यांशों में खोजे हैं। उन्होंने चिंतन की इस गतिशील रीति को अकबर-कालीन सिद्धहस्त कवियों -नजीरी, जहूरी, उर्फी और फैजी - से जा मिलाया है। "ग़ालिब के समक्ष सिवाय अपने निजी अनुभवों के कोई समष्टिगत उद्देश्य नहीं था। इसलिए उनका मन गतिशील तथा क्रियाशील था।" इसलिए कि उसके पीछे कर्मवाद की एक सुदीर्घ परम्परा थी।

ग़ालिब और इक़बाल के चिन्तन व भावों का यह तुलानात्मक अध्ययन इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है की इक़बाल आरम्भ से ही ग़ालिब से प्रभावित थे। 'बांगेदरा' में संकलित 'मिर्ज़ा ग़ालिब' शीर्षक कविता से तो सभी परिचित है, लेकिन उन्होंने 1911 में stray

1. न ख़ुशी ख़ुशी है, और न ग़म ग़म है, कोई हमेशा रहने वाला नहीं। संसार में किसी भी वस्तु को स्थायित्व, अमरता प्राप्त नहीं।

Thoughts में ग़ालिब के विषय में जो लिखा है उस ओर दृष्टि कम जाती है, जिस पर यूसुफ़ हुसैन ने उचित रूप में बल दिया है:-

"मेरे विचार में इस्लामी साहित्य में हिन्दुस्तानी मुसलमानों का यदि कुछ आदरणीय योगदान है तो मिर्ज़ा ग़ालिब के कारण है। वह उन कवियों में से थे जिनका चिन्तन व कल्पना उन्हें धर्म एवं राष्ट्रीयता की सीमाओं से ऊपर कर देता है। उनकी महानता को स्वीकार करना अभी शेष है।"

ग़ालिब के यहाँ गतिशील सौंदर्य जो अणुखण्डों में प्राप्त है, इक़बाल की विचार-पद्धति में उसका एक अटूट स्थान है, क्योंकि सत्यम्, शिवम् और सुंदरम एक ही यथार्थ के तीन पहलू हैं-

"जीवन अपने समस्त रहस्य कर्म के सामने प्रकट कर देता है। वाह् कर्म से सृष्टि में परिवर्तन होता है और आन्तरिक कर्म से संवेदनशीलता तथा चरित्र का निर्माण होता है।" (पृ. 168)

"इक़बाल का समस्त काव्य गतिशील और सजीव प्रतीकों एवं रूपकों से परिपूर्ण है।" इसका सर्वोन्तम उदाहरण फारसी में 'सरोदे-अंजुम' और उर्दू में 'मस्जिदे कर्तबा' है। इक़बाल के मत में "रचनात्मक अहं का कमाल गति के अभाव में नहीं, बल्कि उसकी निर्बाध कर्मशीलता में मौजूद है। चूँकि परम आत्मा, जिसे इक़बाल पूर्ण स्वतंत्र कहता है, पूर्णकाम है, अतः वह किसी के लिए प्रयास नहीं करती, बल्कि उसके स्व में अनन्त सम्भावनाएं मौजूद हैं उन्हें प्रकट करने के लिए वह शाश्वत सृजन में लीन रहती है।"

(इस्लामी इलाहियात की जदीद तशकील, पृ. 57)

ग़ालिब व इक़बाल की गतिशील (रचनात्मक) सौंदर्य के विषय में यूसुफ़ हुसैन का अन्तिम मन्तव्य यह है-

"इक़बाल के चिन्तन में सृष्टि एवं मानव दोनों गतिशील हैं, कर्मरत हैं .... इस प्रकार इक़बाल ने परमात्मा, प्रकृति और मानव के सम्बन्ध का जो भाव प्रस्तुत किया है वह गति एवं कर्म पर आधारित है। उन्होनें अपने चिन्तन में उन्हीं भावों का प्रतिनिधित्व किया है। इसलिए इस पर आश्चर्य नहीं है की वह अपने उद्देश्य के लिए गत्यात्मक अर्थ का अगुआ है। हाँ, इस पर अवश्य आश्चर्य है की ग़ालिब जिसके समक्ष कोई स्पष्ट उद्देश्य तथा शैक्षिक भूमिकाएं नहीं थीं, अपने काव्य में इतना अधिक गतिशील है। इक़बाल के गतिशील भाव उसके मस्तिष्क की उपज हैं, और ग़ालिब का गतिशील दृष्टिकोण उसके स्वभाव की माँग है।" (पृ. 201-02)

4. ग़ालिब-काव्य का अंग्रेज़ी में अनुवाद

काफी अर्से से यूसुफ़ हुसैन की इच्छा थी कि किसी प्रकार ग़ालिब को हिन्द-पाक उपमहाद्वीप से बाहर के विशाल संसार से अंग्रेज़ी के माध्यम द्वारा परिचय कराया जाए। इस प्रकार ही एक योजना डॉ. ज़ाकिर हुसैन के उपकुलपति के कार्यकाल में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में बन चुकी थी। वह इसकी असफलता की कहानी से भली-भाँति परिचित थे। उनके हृदय में धीरे-धीरे यह भाव उत्पन्न होता था कि अब इस कार्य की

सम्पन्नता का दायित्व वह स्वयं संभाले।

1969 में अखिल भारतीय स्तर पर 'ग़ालिब शताब्दी' के महोत्सव का आयोजन किया गया। डॉ. ज़ाकिर हुसैन, राष्ट्रपति भारत सरकार इसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। एक बार फिर उन्होंनें दूसरे देशों से पधारे प्रतिनिधियों के समक्ष अपनी पुरानी इच्छा को दोहराया कि ग़ालिब को पश्चिम से परिचित कराने के लिए आवश्यक है कि विद्वानों में से कोई ग़ालिब के काव्य का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करने का बीड़ा उठाए। यूसुफ हुसैन इस कार्य पर कटिबद्ध हुए। यह जानते हुए कि किसी भाषा की कविता का दूसरी भाषा में अनुवाद करना कितना कठिन होता है और वह भी ग़ज़ल जैसे पेचीदा काव्य-रुप का तथा ग़ालिब जैसे उलझे भावों वाले कवि का।

अतः ज़ाकिर साहब से उन्होंने जो प्रण किया उसे पूरा करने के लिए 1976 में ग़ालिब के काव्य का अंग्रेजी में अनुवाद करने के लिए लेखनी उठाई और इस लग्न से कार्य किया कि पाँच महीनों में[1] ग़ालिब का प्रचलित उर्दू-काव्य 'नुस्ख़-ए हमीदिया' का चयन अंग्रेजी-अनुवाद सहित छपने के लिए तैयार था।

ग़ालिब के काव्य का अनुवाद करते समय, जैसा कि अनुवादक ने पुस्तक की भूमिका में लिखा है - उनके समक्ष दो मार्ग थे ; एक तो शब्दशः अनुवाद करने का ढंग, और दूसरा कवि के भावार्थ को अंग्रेजी भाषा में प्रकट करने की शैली। उन्होंने ग़ालिब को समझने के उद्देश्य से प्रथम रीति को अपनाया। यों भी वह काव्य-मर्मज्ञ थे, कवि नहीं थे, तो भी गद्य के 'अहसासे-वज़न' (भाव-संतुलन) का ध्यान रखा और अनुवाद के वाक्यों की योजना भी काव्यभिव्यंजना के अनुकूल रखने का प्रयास किया। दूसरे शब्दों में जहाँ तक संभव हो सका अनुवाद की स्वस्थता को प्रमुखता देते हुए काव्य-आत्मा को कविन्तमय गद्य में प्रस्तुत किया है, चूँकि अनुवादक ग़ालिब के काव्य का असाधारण अधिकारी है, और उसकी दृष्टि ग़ालिब के उर्दू तथा फारसी दोनों काव्यों पर समान रुप से होती है, इसलिए दूसरी भाषा की कवित्वमय गद्य में ग़ालिब के 'गंजीन-ए मानी तलिस्म' (भावार्थ का जादू) को इससे अच्छा कोई भाषा का माहिर ही प्रस्तुत कर सकता है। जैसे ग़ालिब की प्रसिद्ध ग़ज़ल -

हुस्ने ग़मज़े की कशाकश से छुटा मेरे बाद,
बोर आराम से हैं अहले-जफा मेरे बाद[1] ।।1।।

के कुछ अश'आर का अंग्रेजी अनुवाद देखिए -

Beauty has been freed
From the destraclion of amorous glances;
At last these oppressors
Are at rest now, after me.

1. जब तक मैं जीवित रहा, महबूब के हावभाव के आकर्षण में फँसा रहा। मेरे मरने के बाद यह आकर्षण-प्रसाधन सब समाप्त हो गया।

When the candle is extinguished

The smoke rises from it,
The flame of love has been clad
In mourning black, after me.

My heart sheds blood
On the sad plight of these beauties
Because their nails have been
Begging for henna after me

Who will now befriend
The heady wine, the vanquisher of men?
This announcement from the Saqi's lips
Re-echoes, after me.

I die of grief to think
That there is no-one in the world
To make lament for love
And constancy, after me.

O'Ghalib! I weep for
The helplessness of love
To whose house shall go the flood
Of annihilation, after me.

ग़ालिब के दीवान (काव्य सग्रंह) की प्रथम ग़ज़ल –

नक्श फर्यादी है किसकी शोख़ी-ए तहरीर का,
कागज़ी है पैरहन, हर पैकरे-तस्वीर का[1]

ग़ालिब के उस काव्य-शैली की प्रतिनिधि है जिसके विषय में कहा गया था –

कलामे-मीर समझे और कलामे मिर्ज़ा समझे,
मगर इनका कहा यह आप समझें या ख़ुदा समझे[2]

यूसुफ़ हुसैन इसमें भी सफल हुए। उदाहरण के रूप में कुछ अश्'आर का अनुवाद देखिए –

1. जगत् की प्रत्येक तस्वीर, चित्र अपनी नश्वरता की बात कह रहा है। सब चित्र कागजी है – नाशवान है।
2. हम 'मीर' का 'मीरजा' का कलाम भली-भाँति समझते हैं, लेकिन गालिब का कलाम नहीं समझ सके: उसे या तो ख़ुदा समझ सकता है या वह स्वयं समझ सकते हैं।

Against whose coquettish art

Is the picture a complainant ?
Each image, robed in paper
Lays charge to its creator.

The intensity of passion beyond control
Is a sight worth seeing;
The swords hard bustre
Shines beyond the sword.

O'Ghalib ! even in captivity
I am fretted by the fire beneath my feet;
Every link of the chain
Has become synged hair.

ग़ालिब के प्रसिद्ध क़िता का

ए ताज़ा वारदाने बिसाते हवा-ए दिल!
ज़िन्हार अगर तुम्हें हवसे-नालो-नोश है [1]

कितना स्वस्थ और सरल अनुवाद किया है –

O thou who hast newly arrived
On the carpet of heart's desire
It thou art fond of the piping
Of flutes, and drinking

With they discerning eyes
Look at me as a warning;
Listen to me if thou hast ears
To receive my admonitory advice.

The appearance of the saqi's face
Is the enemy of faith and reason
The minstrel's melody
Robs one of dignity and self-awareness.

At night it could be seen
That every corner of the carpet

1. इश्क़ की महफिल में पहली बार बैठने वालो सुनो, यदि तुम्हें राग सुनने और शराब पीने की तमन्ना है तो मेरी दशा देखो।

And the palm of the flower-seller

O the delight of the Saqi's gait
And the sweet music of the harp!

The one is paradise for the eye
And the other a heaven for the ear.

In the morning, revisiting
The secne of last night's banquet
One finds neither job and entertainment
Nor the mirthful glam our of the party

Wearing a burnt-out scar
Of sorrowful parting
After last night's gay revel
Only a silent candle remains.

From the unknown these thoughts
Come to me; O Ghalib! to me
The scratching sound from the tip of my pen
Is the musical tone of an angel.

यूसुफ़ हुसैन के इस अनुवाद के विषय में विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि यह 'स्वस्थता के स्तर' (शुद्धता) पर पूरा उतरता है, लेकिन अंग्रेजी भाषा के गद्यानुवाद में ग़ालिब के भावार्थों का जादू मिट जाता है। लेकिन यह काव्यानुवाद की नियति है जब तक कि फिट्ज जीराल्ड जैसी पुनर्रचना न हो ऐसी दशा में 'स्वस्थ' अनुवाद पर आघात लगता है। वास्तव में संगीतात्मक काव्य केवल अर्थ-सम्पदा वाला नहीं होता, उसमें ध्वन्यात्मकता के घुंघरु होते हैं, कल्पना की चपला चमकती है, झिलमिलाते संकेत होते हैं- और उन सबका अनुवाद नहीं किया जा सकता।

इस समय इस बात का अनुमान लगाना कठिन है कि यूसुफ़ हुसैन के अनुवाद से ग़ालिब की कविता की ख्याति उपमहाद्वीप के बाहर कहाँ तक पहुँची। इतना अवश्य है कि इस अनुवाद की अधिकांश प्रतियाँ हिन्दुस्तान में बिक नहीं पाई थीं कि कोई बाहर का पुस्तक-विक्रेता 'लाट' खरीदकर ले गया। इस प्रकार अब हिन्दुस्तानी बाजार में यह अप्राप्य है।

ग़ालिब के उर्दू काव्य-संग्रह से अभी सांस न ली थी कि वह उनकी फारसी कविता की कुछ चुनी हुई ग़ज़लों के अंग्रेज़ी अनुवाद में, गिरते स्वास्थ्य के बावजूद, लीन हो गए। ज़िल अब्बास अब्बासी, उनके अन्तिम समय के प्रिय मित्र के साक्ष्य के अनुसार -

4 फरवरी 1979 की शाम को जब मैं उनसे मिलने एफ-निज़ामुद्दीन एक्सटेंशन वैस्ट

गया तो वह पूरी तरह स्वस्थ थे। डेढ़ घंटे तक बातें करते रहे। मैंने उन्हें केवल एक चिन्ता में ग्रस्त पाया और वह थी अपने अधूरे कामों को पूर्ण करना, ग़ालिब के फारसी काव्य के अंग्रेज़ी अनुवाद का मुद्रण। फरमाने लगे, मैं चाहता हूँ कि यह पुस्तक Persian Ghazals of Ghalib शीघ्र प्रकाशित हो जाए। मैंने विश्वास दिलाया कि ग़ालिब इन्स्टिट्यूट ने इसको छापने का निर्णय ले लिया, बहुत जल्द छपना शुरु हो जाएगा ..... भेंट के दौरान मैंने तीन बार उठना चाहा, मगर उन्होंने बिठालिया ....चलते-चलते फिर फरमाने लगे कि मैं चाहता हूँ कि यह काम अब शीघ्र पूरा हो जाए। यानी बेहोशी में यह एक वसीयत थी जो उन्होंने की।

(हमारी ज़ुबान, डॉ. यूसुफ़ हुसैन ख़ाँ विशेषांक)

5

विविधा

1. उर्दू ग़ज़ल (संकलन सहित)

हैदराबाद में प्रवास के आरंभिक समय की दूसरी कृति 'उर्दू ग़ज़ल' है जिसके अब तक कई संस्करण प्रकाशित होकर लोकप्रियता अर्जित कर चुके हैं। यह, वास्तव में, उनकी साहित्यिक रुचि का उपहार है जो केवल आनन्दानुभूति के लिए किया था और विभिन्न संस्करणों में संवर्धन के कारण विशालाकार होता गया। आधे से अधिक ग्रन्थ 'उर्दू ग़ज़ल' की व्याख्या के रुप में है और आधे से कुछ कम वली औरंगाबादी से लेकर फैज़ अहमद 'फैज़' तक ग़ज़लों के चयन पर निर्भर है। ग़ज़लों के स्वामी मौलाना हसरत मोहानी को, उचित रुप में ही, इसका समर्पण किया गया है और यथार्थतः उन्हें ग़ज़ल का प्रवर्तक कहा जा सकता है।

ग्रन्थ के आरम्भ में यूसुफ़ हुसैन ने ग़ज़ल के विषय में अपना मत इन शब्दों में प्रकट किया है-

"विगत दो सौ वर्षों में 'मीर' के युग से लेकर 'हसरत' व 'जिगर' के आधुनिक युग तक 'उर्दू ग़ज़ल' की शैली में निरन्तर परिवर्तन होते रहे हैं, लेकिन उसके मूल यथार्थ में कोई अन्तर नहीं आया। उससे स्पष्ट विदित होता है कि यह काव्य-विधा अपने वास्तविक रुप को सुरक्षित रखते हुए विभिन्न परिस्थितियों से समन्वय की शक्ति रखती है जो उसके जीवन्त-स्वरूप का प्रमाण है। उनके विचार में ग़ज़ल के रहस्यों एवं लक्षणों में कोई भेद न होने पर भी अर्थ की दृष्टि से यह संकेत बदलते रहते हैं। वह कटु शब्दों में ग़ज़ल के आलोचकों का स्मरण करते हुए लिखते हैं-

"जिस समय से मौलाना हाली ने 'मुक़द्दम-ए शेर-व शायरी' में ग़ज़ल पर आक्षेप किया, उस समय से आज तक ग़ज़ल के विरोध में वही पुराने एवं रुढ़ तर्क प्रस्तुत किए जा रहे हैं। इन सब तर्कों का उद्‌देश्य यह सिद्ध करना है कि ग़ज़ल जीवन की नई आवश्यकताओं के विरुद्ध नहीं हो सकती, इसलिए कि इस काव्य-रुप में भावाभिव्यक्ति की पूर्ण-स्वतंत्रता नहीं मिलती। उसको खण्ड-खण्ड करके भाव/अर्थ के क्रम को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता, ऐसा करना भावों को अस्त-व्यस्त करना है। अभिप्राय यह है कि ग़ज़ल अब विश्वास तथा आदर की वस्तु नहीं रही, अतः इसका अन्त होना ही अच्छा है।

मौलाना हाली ने ग़ज़ल पर जो आक्षेप किया वह सुधारवादी दृष्टि से था, न कि कवित्व की दृष्टि से। उन्हें ग़ज़ल पर सबसे बड़ी आपत्ति यह थी कि यह प्रेम तथा सौंदर्य के विषय की कविता है। प्रेम बुद्धि को खराब करने वाली वस्तु है। इससे जितना बचा जाए उतना ही जाति के सुधार का कारण होगा। उनके निकट प्रेम बेकारी का व्यापार है। लेकिन यह दृष्टिकोण उचित था। मौलाना हाली के अच्छे स्वभाव तथा निस्स्वार्थता पर

संदेह नहीं, लेकिन इस प्रसंग में उनका परामर्श स्वीकार करने योग्य नहीं। यह बात हमारे साहित्यिक स्वभाव की स्वस्थ्ता को प्रमाणित करती है कि मौलाना हाली के परामर्श को स्वीकार नहीं किया गया, यदि स्वीकार किया जाता तो हमारी भाषा हसरत और जिगर, फानी और असग़र के कवित्व से महरुम रहती जो ऐसी हानि होती जिसकी कमी कभी पूरी न होती।"(पृ. 16-17) मौलाना हाली तथा उनके 'मुक़द्दम-ए शेर-व-शायरी' में प्रस्तुत दृष्टिकोण पर शायद ही इससे अधिक साहसपूर्वक किसी और ने लिखा हो। फिर भी यह बात स्मरण रखने योग्य है कि यह ग्रन्थ चौथे दशक में लिखा गया था। ग़ज़ल के पक्ष में यूसुफ़ हुसैन के दृढ़ तर्क इस प्रकार हैं-

"वास्तव में बात इतनी सरल तथा सुगम नहीं है जितना कि ग़ज़ल पर आपत्ति करने वाले समझ रहे हैं। ग़ज़ल की जड़ें हमारी सभ्यता तथा भावनात्मक जीवन की गहराइयों तक पहुँची हुई हैं। उन्हें उखाड़ फेंकना सरल नहीं। मौलाना हाली उर्दू भाषा और साहित्य का, तथा आमतौर पर मुसलमानों के राष्ट्रीय जीवन का सुधार चाहते थे। सुधारवादी उत्साह के आवेश में उन्होंने ग़ज़ल के दोष चुन-चुन कर दिखाए, और राष्ट्रीय चरित्र को सुधारने के लिए सरल तथा सुबोध कविताएं रचीं, और दूसरों को रचने का निमंत्रण दिया। फिर उनके सामने ग़ज़लों में भी विशेष रुप में वह थीं जिनसे अश्लीलता तथा अधमता के प्रचार की आशंका थी।

मौलाना के मत को आज प्रमाण के रुप में प्रस्तुत करना उचित नहीं, वह केवल अस्थायी तथा आपात् स्थितियों का फल था।" (पृ. 17)

ग़ज़ल के उज्जवल भविष्य में 'उर्दू ग़ज़ल' के लेखक को इतना अधिक विश्वास था कि चौथे दशक में डंके की चोट ये शब्द लिख सका -

"पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के कारण सम्भव है ग़ज़ल लेखन को अस्थायी रुप में दुर्दिन देखने पड़े, लेकिन मैं समझता हूँ कि ग़ज़ल इस जोखम को झेल जाएगी। इसमें इतनी जीवन-शक्ति है कि थोड़ा बहुत वाहय रुप बदल कर अपनी गद्दी पर विराजमान हो जाए ... तात्पर्य यह है की मुझे ग़ज़ल का भविष्य उसकी सम्भावनाओं के कारण उज्ज्वल दिखाई देता है, इसलिए कि इस काव्य-रुप से हमारी कुछ प्रमुख और दूरगामी साहित्यिक एवं भावनात्मक आवश्यक्ताओं की पूर्ति होती है। ग़ज़ल हमारी साहित्य-रुचि में इतना प्रविष्ट हो चुकी है कि उस से पूर्णरुप से निस्सगं रहना अस्म्भव है---।" (पृ. 22-23)

'उर्दू ग़ज़ल' से न केवल इस काव्य-रुप के विषय में एक धारणा बनती है, बल्कि उनके भावी प्रिय कवियों-जैसे ग़ालिब, इक़बाल, हसरत और फानी पर समीक्षात्मक ताने-बाने भी तैयार होते हैं, विशेषकर ग़ालिब के विषय में यह कहा जा सकता है कि 'उर्दू ग़ज़ल' में उसकी उन समस्त विशेषताओं की ओर संकेत दिए गए हैं जिन पर बाद में लगातार ग्रन्थों की रचनाएं की गई हैं। जैसे ग़ज़ल की दरुं बीनी (ठहराव, सूक्ष्म विवेचन), प्रतीक व रहस्य का जादू, संगीतात्मकता, भावुकता, सौंदर्यानुभूति, लक्षणा-व्यंजना के विषय में जहाँ अन्य कवियों के अश'आर दिए गए हैं, ग़ालिब के निम्नांकित अश'आर वह आरम्भ से ही नक़्ल करते आए हैं-

ख्याले-जल्व-ए गुल से ख़राब है मैकश,
शराब खाने की दीवार-व-दर में खाक नहीं

देखकर तुझको चमन बस कि नमू करता है,
खुद-ब-खुद पहुँचे है गुल गोश-ए दस्तार के पास

गर नहीं निकहते-गुल [1] को तेरे कूचे की हवस,
क्यों है गर्दे-रह जौलाने-सबा [2] हो जाना

ग़मे फिराक़ ने तक्लीफे-सैर बाग़ न दो,
मुझे दिमाग़ नहीं, खन्दा [3] हाय बेजा का

करता है बस कि बाग़ में तू बेहिजाबियां[4],
आने लगी है निकहते-गुल से हया मुझे

यूसुफ़ हुसैन ने ग़ालिब पर अपने ग्रन्थों में 'ग़ालिब के ग़म' का निरन्तर वर्णन किया है। उर्दू ग़ज़ल की आलोचना में इसका स्पष्ट आधार मिल जाता है, लिखते हैं-

"ग़ालिब के यहाँ ग़म विभिन्न रुप धारण करता है। कभी ग़मे रोज़गार का, कभी ग़मे इश्क़ का, कभी अमिट इच्छा और इन्तज़ार का। 'ग़मे इश्क़ के द्वारा 'ग़मे रोज़गार' से सुगमतापूर्वक मुक्ति प्राप्त हो सकती है-

इश्क़ से तबीयत ने जीस्त [5] का मज़ा पाया,
दर्द की दवा पाई, दर्द ला दवा पाया

मुद्दआ महवे तमाशा-ए-शकिस्ते-दिल,
आईना खाने में कोई लिए जाता है मुझे

हसरत की ग़ज़ल-रचना पर यूसुफ हुसैन ने बाद में जो कुछ लिखा उसकी रेखाएं भी 'उर्दू ग़ज़ल' में मिल जाती हैं। हसरत की आशावादिता, उनका पवित्र प्रेम, उनकी रंग-गंध की अनुभूति, उनका 'लौकिक' प्रेम-तात्पर्य यह कि हसरत के काव्य के जो भी गुण हैं उन सबकी ओर इस ग्रन्थ में संकेत मिलते हैं। एक अन्य कवि जिस पर यूसुफ हुसैन, उर्दू ग़ज़ल के बाद कुछ न लिख सके (यद्यपि बहुत लिख सकते थे), जिगर मुरादाबादी हैं जिनके अश'आर अधिक संख्या में यहाँ उद्धृत किए गए हैं और जिनके द्वारा ग़ज़ल के सौंदर्य को उभारा गया है, लेकिन आधुनिक ग़ज़ल रचनाकारों पर चयन तथा आलोचना दोनों में अधिक श्रम नहीं किया गया। फिर भी फिराक़, जज़बी, यगाना, मजाज़, आनन्दनारायण मुल्ला और फैज़ का काव्य सम्मिलित है। प्राचीन और मध्यकालीन कवियों में से ऐसों को भी शामिल किया गया है जिनके काव्य का कोई विशेष महत्व नहीं है-जैसे : सिराजुद्दीन अली ख़ाँ आर्ज़ू, राजा राम नरायण मोज़ूं, शाह वाक़िफ देहलवी,

1. पुष्प-गंध, 2. वायु की गति, स्फूर्ति, 3. मुस्कान, 4. बिना पर्दा, 5. जीवन

अहमद अली जौहर, राय आनन्द राम मुखलिस, आफ्ताब राय रुसवा, मिर्जा असकरी मुर्शिदाबादी, मीर आला अली देहलवी, मुहम्मद मुनव्वर ख़ाँ ग़ाफिल लखनवी, हाफिज फज़लू मुमताज़ देहलवी, जियाई बेगम जियाई, खैरुद्दीन यास। इनके समावेश के कारण दूसरे कवियों का काव्य उचित मात्रा में न दिया जा सका, और न आधुनिक ग़ज़लकारों की पंक्ति में अन्य नामों को संकलन में शामिल किया जा सका।

कुल मिलाकर 'उर्दू ग़ज़ल' न केवल यूसुफ़ हुसैन की काव्य-रुचि का प्रमाण देता है, वरन् इससे उनकी चयन-दृष्टि का अनुमान भी होता है। ग़ज़ल, शिल्प-रुप दोनों पर उनकी दृष्टि कितनी गहरी थी इस बात का अनुमान उस विस्तृत भूमिका से हो जाता है जो इस संकलन की शोभा है।

1. मयख़ाने (मधुशाला, संसार) के दर व दीवार में कुछ भी नहीं है, शराबी को उसकी चिन्ता नहीं। वह तो काल्पनिक लोक में विचरण कर आत्मविभोर हो रहा है।
2. तुझे देखने मात्र से ही बाग विकसित होता है। फूल खुद ही सजने के लिए महबूब की टोपी के पास पहुँच जाता है।
3. फुल को अपनी सुगंध फैलाने की तमन्ना है। यदि सुगंध को तेरे कूचे में जाने की तमन्ना न होती तो वह वायु के रास्ते की गर्द क्यों बनती?
4. मैं चिर वियोग से पीड़ित हूँ, मुझे बाग की सैर (मिलन) के लिए निमंत्रित न करो। मुझे व्यर्थ का मज़ाक पसंद नहीं।
5. परम सत्ता ने अपना पर्दा (हिजाब) हटा दिया है, अपने को अभिव्यक्त किया है। फूल की महक से मुझे हया आती है, मन द्रवित हो जाता है।
6. जब प्रेम का रोग लगा तो जीवन में आनन्द आ गया ; क्योंकि प्रेम के ग़म में दुनिया का ग़म भूल गये, यानी जीवन के दर्द की दवा मिल गई। प्रेम-रोग की कोई दवा नहीं।
7. दिल के टूटने का तमाशा देखने के उद्देश्य से मुझे कोई शीशे के घर में लिए जाता है।

2. तारीख़े दस्तूर हिन्द

(भारतीय संविधान का इतिहास)

यह अंग्रेजी-युगीन हिन्दुस्तान के संविधान का विस्तृत इतिहास है। इसका आरम्भ 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' के काल से होता है और रचना-काल तक के संविधान के इतिहास का समावेश करता है।

3. तारीखे-दकन
   (दक्षिण का इतिहास)

   हैदराबाद दकन के इतिहास पर पाठ्यपुस्तक
   (दारुलतबा जामिआ उस्मानिया)

4. फ्रांसीसी अदब
   (फ्रांसीसी साहित्य)

यूसुफ हुसैन के फुटकर साहित्य में एक प्रमुख पुस्तक 'फ्रांसीसी अदब' है जिसे अंजुमन तरक्क़ी उर्दू, अलीगढ़ के तत्त्वावधान में , उर्दू टाइप, में 1962 में प्रकाशित किया गया था। इस कारण का औचित्य लेखक ने इन शब्दों में रेखांकित किया है-

"अधिकाश जानकारी फ्रांसीसी ग्रन्थों से संकलित की गई है। इस प्रसंग में मुझे अपनी कमियों का अहसास है, लेकिन उर्दू भाषा में ऐसी कोई पुस्तक इस विषय पर मौजूद न थी, अतः इस कार्य को पूर्ण करने का साहस हुआ।"

दूसरे शब्दों में यह लेखक का स्वाभाविक कार्य नहीं, लेकिन फ्रांसीसी भाषा और साहित्य से गहरा लगाव विद्यार्थी-जीवन से ही था और पेरिस यूनिवर्सिटी से उन्होंने अपनी डॉक्टरेट की डिग्री प्राप्त की थी, इसलिए उस भाषा के साहित्य का अध्ययन करने का काफी समय मिला था। उन्होंने फ्रांस के चुने हुए साहित्यकारों की कृतियों का मूल भाषा में अध्ययन किया था। इनके अतिरिक्त उन अनेक साहित्य के इतिहास के ग्रन्थों से भी लाभ उठाया, जिनकी फ्रांसीसी भाषा में कोई कमी न थी। वह अपनी साहित्य-समृद्धि में उन पुस्तकों से प्रभावित हुए हैं। लेकिन प्रत्येक पग पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कुछ लेखकों के विषय में उनका मत पूर्ण निर्धारित था ; विशेषकर इस पुस्तक के अंतिम सात अध्यायों में निजी प्रभावों का काफी समावेश है जिससे मालूम होता है कि उस युग के लेखकों का उन्होंने गहरा और व्यापक अध्ययन किया है। अंतिम सोहलवें अध्याय में उनका इस प्रकार का अवलोकन निजी है और किसी से उधार मांगा हुआ नहीं है -

"फ्रांसीसी साहित्य में आरम्भ से वर्तमान युग तक एक प्रकार का समन्वय (एकता) मिलता है। विभिन्न युगों के साहित्यकारों की कृतियों में जिस भावना के द्वारा यह समन्वय स्थापित हुआ वह मनुष्य के विषय में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा अनुसन्धान है। (पृ.550)" या यह उदाहरण -

"फ्रांसीसी साहित्यकार साधारणतः सामूहिक समस्याओं की ओर इतना ध्यान नहीं देता जितना व्यक्तिगत समस्या की ओर, जो व्यक्ति की आन्तरिक दशा तथा अनुभवों पर हावी होता है। वह जानता है कि व्यक्ति के अन्दर जो ग्रन्थियां पड़ी होती हैं उन्हें खोलने में वह सफल हो गया तो जीवन के सार्वभौम यथार्थ तक उसकी पहुँच सम्भव होगी।" (पृ. 559)

फ्रांसीसी साहित्य की शिष्टता के विषय में उन्होंने कितने सुंदर शब्दों में व्याख्या की है-

"फ्रांसीसी साहित्य में 'व्यक्ति' सदैव आकर्षण का केन्द्र रहा है। फ्रांसीसी साहित्यकार अपनी राष्ट्रीय नियति को भी 'व्यक्ति' के दर्पण में देखते हैं। उन्होंने अपने

इतिहास के किसी युग में भी व्यक्ति के अस्तित्व के स्वतंत्र होने को विस्मृत नहीं किया। यह 'स्वतंत्रता' प्रत्येक व्यक्ति में मौजूद रहती है और उस तक पहुँचना उस समय सम्भव है जब व्यक्ति स्थायी रूप में अपना मानसिक एवं आध्यात्मिक आत्मविश्लेषण करे और स्वयं अपने आप से आन्तरिक संघर्ष करता रहे।" (पृ. 61-62)

एक अन्य स्थान पर उन्होंने फ्रांसीसी के राष्ट्रीय स्वभाव के मूल तत्वों का इन शब्दों में विश्लेषण किया है-

"यूरोप के किसी राष्ट्र के जीवन में इतना विरोधाभास नहीं जितना कि फ्रांसीसियों में है। बाहर वालों के निकट फ्रांस में अनेक संगठन हैं, सामाजिक वर्ग-श्रेणियाँ है, भावना तथा आस्था का द्वन्द्व है, लेकिन इस स्पष्ट विरोध के बावजूद फ्रांसीसी लोगों के जीवन की तह में एकता विद्यमान है। देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि फ्रांस में विरोध की खाड़ी चौड़ी होती जा रही है। लेकिन वास्तव में वह अन्दर-ही-अन्दर ऐसी शक्तियाँ काम करती रहती हैं जो मानसिक स्तर पर सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधे रखती हैं। इस उद्देश्य को वहाँ के कवि-कलाकार पूर्ण करते हैं। वह कभी ऐसा अवसर नहीं आने देते कि फ्रांसवासी अपनी आत्मा की आवाज से कान बंद कर लें। साहित्य के द्वारा सामाजिक जीवन का सम्पर्क एवं सम्बंध स्थिर रखा जाता हैं। तनाव के समय साहित्य राष्ट्रीय जीवन में स्थिरता का कारण बन जाता है।" (पृ. 563)

मैंने उपसंहार के इस अध्याय से अधिकांश उदाहरण इसलिए प्रस्तुत किए हैं कि यह लेखक की साहित्यिक दृष्टि की ओर संकेत करते हैं और सिद्ध करते है कि यूसुफ़ हुसैन ने फ्रांसीसी साहित्य के इतिहासों से अनुवाद नहीं किए है, बल्कि इस भाषा के साहित्य का स्वंय अध्ययन करने के पश्चात् ही इतिहास की साहित्यिक प्रवृत्ति का निर्णय किया है।

'फ्रांसीसी साहित्य' की सबसे बड़ी विशेषता उसकी साहित्यिक शैली है। इस दृष्टि से मैं उसे यूसुफ़ हुसैन की सबसे अच्छी कृति मानता हूँ। इसमें भाषा की वह कठिनता नहीं जो 'रुहे-इक़बाल' या ' ग़ालिब व आहंगे-ग़ालिब' या अन्य कृतियों में मिलता है, जहाँ गद्य के लिए अधिक मात्रा में अश'आर का आश्रय लिया गया है। ऐसा प्रवाहमयी तथा संतुलित गद्य उनकी किसी अन्य पुस्तक में नहीं मिलता। सम्भवतः इसका कारण यह है कि वह आलोचना की भाषा लिखने से अधिक 'इतिहास' की भाषा पर अधिकार रखते हैं। इसमें इतिहास का प्रवाह तथा साहित्यिक दृष्टि की गहनता है। उन्होंने इससे पूर्व और न इसके पश्चात् इतना सरल, प्रवाहमयी, सजीव गद्य कभी नहीं लिखा। हो सकता है यह फ़्रांसीसी भाषा एवं साहित्य का योगदान हो, जिनकी पुस्तकों का उनके पास निजी भण्डार था, जिसे उन्होंने जामिआ मिल्लिया इस्लामिया के पुस्तकालय को भेटं-स्वरूप प्रदान कर दिया था।

फ्रांसीसी साहित्य पर हमारे आलोचकों की सर-सरी नजर पड़ी है। यही कारण है कि जब यूसुफ़ हुसैन की ग़ालिब, इक़बाल और ग़जल पर रची पुस्तकें अधिक चर्चित रहीं, वहाँ इस पुस्तक की चर्चा बहुत कम हुई। मेरी दृष्टि में इसके महत्त्व का आकलन सर्वप्रथम डा. अब्दुल मुग़नी ने अपने आलेख 'यूसुफ़ हुसैन ख़ाँ: विद्वान या आलोचक?' में किया है जो 'हमारी जुबान' के यूसुफ़ हुसैन ख़ाँ विशेषांक में सम्मिलित है। लिखते हैं-

"मेरे विचार में यूसुफ़ हुसैन ख़ाँ का ज्ञान का भव्य कार्य 'फ्रांसीसी साहित्य' है जिसमें

उन्होंने विषय से संम्बधित आवश्यक तथ्य बड़ी सुन्दरता से संकलित कर दिए हैं। यूरोपीय तथा पश्चिमी साहित्य के प्रमुख आन्दोलनों एवं प्रवृत्तियों का एक प्रामाणिक चित्र खीचं दिया है। इनके अध्ययन से नवीनतम साहित्यिक रुचियों एवं शिल्पगत प्रयोगों के स्रोतों का ज्ञान मिलता है। पश्चिमी की सीमाओं तक विश्वसाहित्य की घटनाओं को समझने के लिए उर्दू भाषा में इससे श्रेष्ठ अन्य साहित्यिक ग्रन्थ नहीं रचा गया। उर्दू में आधुनिक साहित्यिक प्रयोगों तथा नारों में दिलचस्पी लेने वालों के लिए यह ग्रन्थ नवीन ज्ञान का भन्डार है। इससे प्रतीत होता है कि हमारी सकल साहित्य-गोष्ठियाँ क्यों पुरानी हैं तथा अपने प्रयोगों में जीर्ण हो गई हैं। आधुनिक उर्दू साहित्य के आलोचकों तथा प्रेमियों के लिए यह ग्रन्थ अति लाभदायक होगा।"

5. 'हसरत' की कविता

यूसुफ़ हुसैन को 'हसरत' और 'जिगर' की कविता (ग़ालिब और इक़बाल के बाद) से आरम्भ से ही अनुराग रहा है जिसका प्रमाण उनकी 'उर्दू ग़ज़ल' है। इसमें इन दोनों कवियों के अश'आर अधिक मात्रा में प्रस्तुत किए हैं। इन दोनों से उनके व्यक्तिगत सम्बन्ध भी थे। मौलाना हसरत मौहानी के राजनीतिक जीवन में स्वतंत्रता की भावना के वह सदैव प्रशंसक रहे और जिगर का उन्होंने बार-बार आतिथ्य किया था। उर्दू ग़ज़ल के अतिरिक्त 'जिगर' पर पृथक रुप में कुछ नहीं लिख सके। लेकिन अपनी अलीगढ़ की प्रोवाइस-चांसलरी की व्यस्तता के बावजूद फ्रांसीसी साहित्य के संपादन के साथ-साथ उन्होंने एक संक्षिप्त-सी पत्रिका 'हसरत मौहानी' पर लिखी थी जो मक़्तबा जामिआ से 1962 में प्रकाशित हुई।

पत्रिका की भूमिका में उन्होंने हसरत की ग़ज़ल की संरचना तथा उनकी निजी शैली से उदाहरण देते हुए विवेचना की है। जैसा कि मैं पूर्व अंकित कर चुका हूँ कविता की आलोचना में यूसुफ़ हुसैन विषयगत आलोचना के हिमायती हैं। आलोचक के सामने कवि इतना अधिक समक्ष नहीं रहता जितनी उसकी रचना रहती है। लेकिन वह इस विषयगत विश्लेषण द्वारा कुछ काव्य-संग्रहों के परिणाम प्रस्तुत करते हैं। जैसे हसरत के विषय में लिखा है-

" 'हसरत' के सम्पूर्ण काव्य का आद्योपान्त अध्ययन कीजिए, वह मृत्यु का वर्णन कहीं मुशिकल से ही करते हैं.... शायद इसलिए कि वह जानते थे कि मृत्यु पर यदि कोई वस्तु विजय पा सकती है तो वह प्रेम हैं और चूंकि वह प्रेम ही प्रेम थे, इसलिए मृत्यु पर उनकी पूर्ण विजय थी।" (पृ. 3)

"उनके काव्य का वास्तविक प्रेरक तत्व पवित्र प्रेम हैं उन्होंने विशेष व्यवस्था इसलिए की कि सांसारिक प्रेम के डांडे अधिकतर लोभवृति से जा मिलते हैं।" (पृ.5) "हसरत का ग़ज़ल-गायन प्रेम कें हृदय-उद्‌गारों और उसकी अमिट दशाओं की कथा है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह उस प्रेम-कथानक के स्वयं नायक हैं। उनका जीवन प्रेम कहा जा सकता है।" (पृ. 5)

"वह जिसे इश्क़ कहते हैं, वह शुद्ध रूप में मानवी व संसारिक है।" (पृ. 8)

"उनका काव्य भावों का काव्य है, न कि कल्पना का" (पृ. 13)

"जिस प्रकार ग़ालिब का इश्क़ अमीराना था, 'मीर' साहब का इश्क़ फकीराना, उसी प्रकार हसरत का इश्क़ शरीफाना है।" (पृ. 25)

"अवचेतन की स्मृतियों को उभारने में सुगन्ध की बाहरी प्रेरणा का बहुत हाथ है।"

इन उदाहरणों द्वारा यूसुफ़ हुसैन ने 'हसरत' के काव्य की प्रमुख विशेषताओं को उभारा है। "उन्होंने अपने पावन प्रेम के द्वारा 'उर्दू ग़ज़ल' को बिल्कुल एक नए प्रकार के प्रेमी (या प्रेयसी) से परिचय कराया है। जो उनके काव्य की भाँति वैयक्तिक निजी हैं। जान पड़ता है 'हसरत' को स्वयं इस बात का अहसास था कि 'प्रेम की सभ्य रीति' को विशेष प्रकार से जीवित कर रहे हैं।" (पृ. 39)

जहाँ तक 'हसरत' के काव्य-शिल्प का सम्बन्ध है यूसुफ़ हुसैन ने उचित ही लिखा है:-

"लखनवी भाषा व मुहावरे तथा दिल्ली की अभिव्यंजना-शैली के सम्मिश्रण से हसरत के काव्य-रंग की रचना हुई, जिसमें हृदयपक्ष तथा कलापक्ष दोनों ने अपना स्थान प्राप्त किया....

"उनकी ग़जल ने उर्दू काव्य के लिए नई सम्भावनाओं का मार्ग साफ किया। हसरत को उर्दू काव्य में नवीन प्रवृत्ति का जनक कहना समीचीन होगा, जिसके द्वारा ग़ज़ल में भावों की अनुपमता वुजूद में आई, और इश्क़ व प्रेम को विश्वास प्राप्त हुआ।"

6. कारनामे फ़िक्र

साहित्य और इतिहास के अतिरिक्त यूसुफ़ हुसैन की दर्शन में भी अगाध रुचि थी। इक़बाल पर एक निबन्ध सुनने के पश्चात् उस्मानिया विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के विभागाध्यक्ष खलीफा अब्दुलहकीम ने एक बार उनसे कहा था- "यूसुफ़ हुसैन! आपको दर्शन-विभाग में होना चाहिए था।" वास्तव में यूसुफ हुसैन की जीवन-व्यथा यह थी कि वह व्यवसाय से इतिहासकार, रुचि से साहित्यकार तथा चिन्तन से एक दार्शनिक प्रकृति के थे, इसलिए उनका ग्रन्थ "कारनामे-फ़िक्र" तीन पथों पर विभिन्न युगों में अग्रसर रहा है।

'कारनामे-फ़िक्र' उनके नैतिक तथा दार्शनिक निबन्धों का संक्षिप्त सा संग्रह है जो उन्होंने अलीगढ़ की पत्रिका 'फ़िक्रे नजर' के लिए लिखे थे और जिन्हें बाद में संपादित कर इस शीर्षक से 'मक़तबा जामिआ' देहली ने 1965 में प्रकाशित किया। यूसुफ़ हुसैन की दार्शनिक प्रवृत्ति का प्रमाण उनकी इक़बाल पर लिखी कृतियों से मिलता है। 'कारनामे फ़िक्र' में यही प्रवृत्ति दार्शनिक निबन्धों का आकार ग्रहण कर लेती है जिनमें मुहम्मद जियाउद्दीन अन्सारी के मतानुसार "इतिहास की गहनता, साहित्य की चाशनी, नैतिकता की शिक्षा और दार्शनिक स्वर का सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है।"

यूसुफ़ हुसैन को दार्शनिक गद्य रचने की आदत जामिआ मिल्लिया इस्लामिया के इस्लाम और इस्लामियात के वातावरण में विशेष रुचि के कारण पड़ी। 'रूहे-इक़बाल' ने उनकी इस रुचि को और अधिक पल्लवित किया। उस्मानिया विश्वविद्यालय में विद्वानों के

सम्पर्क में रहने से उर्दू की परिनिष्ठ भाषा पर अधिकार प्राप्त हुआ। 'कारनामे-फ़िक्र' इस दृष्टि से उनकी अभिव्यंजना शक्ति का निचोड़ है और रुचि प्रधान रचना होने के कारण यातव्य है। इस से यह विदित होता है कि एक गैर पेशावर दार्शनिक किस रुप में अपने ज्ञान के अनुसार दार्शनिक प्रश्नों पर चिन्तन कर सकता है।

उनकी दार्शनिक रुचि का अनुमान इन विषयों से लगाया जा सकता है जो इस पुस्तक में रेखांकित हैं-

प्रथम अध्याय : नैतिक मूल्य
द्वितीय अध्याय : ज्ञान और जीवन
तृतीय अध्याय : इतिहास में अधिकार व अत्याचार की धूप-छाँव
चतुर्थ अध्याय : साहित्यिक मूल्य

इन सभी विषयों पर यूसुफ़ हुसैन ने एक इतिहासकार की व्यापक दृष्टि, एक चिन्तन की गहराई और एक साहित्यकार की लेखन शैली के रुप में समस्याओं पर विचार किया है। प्रत्येक पग पर संतुलन तथा समता को बनाए रखा है। डा. अब्दुल ग़नी का यह विचार है कि "यूसुफ़ हुसैन खाँ विद्वान थे, आलोचक नहीं," उनका निबन्ध 'साहित्यिक मूल्य' पढ़ने के पश्चात् तिरोहित हो जाता है। उनकी साहित्य के विषय में एक विशेष सौदंर्य-दृष्टि थी, जिसमें व्यक्ति के अस्तित्व का बहुत महत्व था। आलोचना में उनकी शैली दृष्टिप्रधान न होकर विषयप्रधान थी। अतएव ग़ालिब हो, इक़बाल या हाफ़िज़, वह विषय के आधार पर ही अपने विचारों को आगे बढ़ाते थे। हाफ़िज़ और इक़बाल पर एक सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए आनन्द नारायण मुल्ला ने जब अचानक यह कहा कि इन दोनों में कोई मूल्य समान नहीं तो उस समय भी उनकी दृष्टि यूसुफ़ हुसैन की गहरी परख पर नहीं पड़ी और उन्होंने सरसरी तौर पर जो कुछ कहा जाता रहा है, केवल उसी को दोहराया है।

7. यादों की दुनिया

'यादों की दुनिया' यूसुफ़ हुसैन द्वारा लिखित आत्मकथा है जिसका स्वभाव प्रधान होने के कारण उनके ग्रन्थों में प्रमुख स्थान है। इसका प्रकाशन-वर्ष 1967 है, और यह उस समय की यादगार है जब 1965 में मुस्लिम विश्वविद्यालय से सेवानिवृत होने के पश्चात् वह अपने भाई आदरणीय डा. ज़ाकिर हुसैन, उपराष्ट्रपति की कोठी पर रह रहे थे। उन दिनों उन्हें पूर्ण अवकाश था और वह अपनी आयु के 64 वर्ष पूर्ण कर चुके थे। उम्र का यह चरण ऐसा होता है कि जब प्रत्येक व्यक्ति की ज़ुबान का पर 'शाद अज़ीमाबादी' की यह पंक्ति होती है-

"ज़रा उम्रे-रफ्ता को आवाज़ देना"

'यादों की दुनिया' की शोभा भी यही पंक्ति है और यह उनके मानसिक अलगाव का संकेत है। मुस्लिम विश्वविद्यालय के संघर्षपूर्ण युग के पश्चात् अब उनके कर्मशील जीवन की

संध्या थी। अतः उन्होंने अपनी जीवन-गाथा का वर्णन करते हुए एक बार फिर लेखनी को मजबूती से पकड़ा।

'यादों की दुनिया' कई दृष्टियों से उनकी एक महत्वपूर्ण रचना है। आत्मकथा अच्छी-बुरी कैसी ही हो पढ़ने की चीज होती है। इसके कुछ भाग (जैसे प्रथम और द्वितीय अध्याय, जो 'पृष्ठभूमि' और 'पूर्वज' के वर्णन से सम्बंधित हैं) इतिहासकार के लेखन-प्रवाह तथा जीवनी लेखक की स्मरण शक्ति की रोचक तथा अनेक उदाहरणों से भरे हुए हैं। 'बचपन की यादें' के अन्तर्गत वह क़ायमगज के अपने मकान और वातावरण का कितना सरल, लेकिन मनोहर चित्र इन शब्दों में खीचतें हैं-

"हमारा घर चारों ओर आमों तथा नारंगियों के बाग़ों से घिरा हुआ था। मार्च के महीने में उनसे भीनी-भीनी और प्राणदायक सुगन्ध की लपटें निकलती थीं जो भावों-कल्पनाओं को उद्‌दीप्त करती थीं। विशेषकर नारंगी और मिठ्ठे के शगूफ़ों से जो सुगन्ध निकलती उसे आधा-आधा घंटे खड़ा सांस के द्वारा जज्ब करता। वातावरण में श्यामवर्ण भ्रमरों एवम् शहद की मक्खियों की भिनभिनाहट से मेरा ह्रदय शान्ति महसूस करता था। यहाँ पक्षियों का कलरव प्रातः काल से सांयकाल तक क्षण भर के लिए भी बन्द न होता था। इस वातावरण में श्रवण-दृष्टि में जन्नत, और प्राणशक्ति में फिरदौस एकत्रित हो गई थीं। घर के जनाने भाग के आंगन में छोटे नीम की जड़ से लेकर चबूतरे के बीच सीढ़ियों तक बेला, मोतिया, चमेली के पौधे थे जिनमें पुष्प विकसित होते तो सकल आंगन तथा चबूतरा महक उठता। कोठी के आंगन में हरसिंगार का वृक्ष था जिसके लाल वर्ण पुष्पों की रंगत और सुगन्ध दोनों ह्रदय को मोहित करते थे। गर्मियों में प्रातः से सायंकाल तक मुहल्ले की लड़कियाँ फूल चुनने आतीं और फिर उनसे चुन्नियां रंगतीं। ग्रीष्म में आम के बागों में पपीहे की 'पीउ-पीउ' और कोयल की 'कू-कू' से सकल बाग़ गूंज उठता। अन्ना के घर में फाख्ता की 'याहू-हू' प्रातः से सांयकाल तक सुनता। कोठी में बरामदे की कटगर पर कबूतरों ने अपने घोंसले बना लिए थे। मैंने जब से होश संभाला तब से उनकी गुटरगूं-गुटरगूं कानों में बस गई थी---।

गर्मियों की रात में घर के अन्दरुनी आंगन में जुगनू मंडराते फिरते। मैं कभी-कभी उन्हें दौड़कर पकड़ लेता। ढीली मुट्ठी में बन्द करके अंधेरे में ले जाता, उनके प्रकाश दीप को देखता और छोड़ देता---।

हमारे घर के चारों ओर बाग़ ही बाग़ थे, और अब भी हैं। मस्जिद के निकट कुछ घर बसे हुए थे, वह भी बाद में उजड़ गए। घर में शान्ति का जो सन्नाटा रहता था, उसके चिन्ह मेरी स्मृतियों में सुरक्षित हैं।

यहाँ मुकम्मल सन्नाटा था, बिना किसी मिलावट के। घर के सामने क़ब्रों के कारण इस सन्नाटे में वृद्धि हो गई थी। चारों ओर झींगरों की आवाज भी सन्नाटे की सनसनाहट को बढा देती थी। अंधकार और प्रकाश का विरोधाभास जैसा क़स्बों के, गाँवों के जीवन में स्पष्ट होता है, वैसा नगरों में नहीं होता। रात्रि में घर से पग बाहर निकालते तो घोर अंधकार का सामना करना पड़ता, जहाँ तनिक भी प्रकाश नहीं होता। मैं कभी 'मग़रिब' (सूर्यास्त होने पर नमाज का समय) के कुछ देर बाद कोठी के बाहर चबूतरे पर

टहलने निकलता तो सन्नाटा तथा अंधकार मिलकर जादुई माहौल पैदा कर देते, जिससे हृदय घबराता नहीं था, वरन् उसमें रमता था। क़ायमगंज के पश्चात् पूर्ण शान्ति तथा अंधकार की फिर अनुभूति नहीं हुई।"

लेकिन यह निराशावाद उन के सभी लोगों का है जो गाँवों से नगरों की ओर प्रस्थान कर रहे है।

यूसुफ़ हुसैन की आत्मकथा का यह भाग न केवल प्रकृति के साधारण एवं रंगीन चित्रों से परिपूर्ण है, बल्कि उसमें पशु-पक्षियों के लिए भी विशेष स्थान है। कौओं का अपने प्रिय मित्र के लिए शोक करना, तोते का स्वतंत्र तथा बंदी जीवन, कुत्ते-कुतिया की मैत्री तथा साहचर्य इन सबका वर्णन उन्होंने अपने व्यक्तित्व को चित्रमय बनाकर किया है। इसीलिए उसके पढ़ने में कहानी जैसा आनन्द आता है। आश्चर्य इस बात पर है कि जहाँ वनस्पति तथा पशुओं के वर्णन में अंग-चित्रांकन का उत्कर्ष मिलता है, वहाँ बालकाल के व्यक्तियों के वर्णन में न तो वह बारीकी मिलती है और न हास्य-व्यंग्य का आनन्द। यह किसी प्रकार की मानसिक दूरी (सुरक्षा) है जो उन्हें व्यक्तियों के विषय में खुलकर लिखने नहीं देती। उन्होंने क़ायमगंज के 'हसीन बूढ़ों' का भी वर्णन किया है, लेकिन उनकी लेखनी में स्फूर्ति वहाँ आई जहाँ उन्होंने 'खूबसूरत नौजवान' के अन्तर्गत नव युवकों का चित्रांकन किया है-

"उन महफिलों में जो युवक नजर आते थे वैसे युवक फिर देखने में नहीं आए। बहुधा जमींदारों के लड़के थे। घर में खुदा का दिया सब कुछ था। कसरत का शौक़ था। कसरत करके शरीर सुन्दर बनाने का शौक क़ायमग़ज के युवकों की पुरानी रीति में सम्मिलित था। इस प्रकार वह परिश्रम के आदी बने। कसरत उन्हें अनेक प्रकार की बुराइयों से बचाती थी। ऐसा भी है कि उस युग के खाते-पीते युवकों को जो सुविधाएं प्राप्त थीं वे आज अप्राप्य हैं। शुद्ध दूध, शुद्ध घी, उत्तम मांस सब कुछ उपलब्ध था ; फिर निशिचतंता---प्रातः नाश्ते में खिचड़ी और उसके साथ दानेदार घी, और रोटी जैसी मोटी मलाई वाली दही, उसका स्वाद मैं कभी नहीं भूल सकता... ।

क़ायमग़ंज के आधीशताब्दी पूर्व के नवयुवकों की ऊपरी सजधज और वेशभूषा भी नयनाभिराम थी ; लाल व सफेद रंग, चौड़ी छाती, पतली सिंह जैसी कमर, बनी हुई भुजाएं, सिर पर रंगीन साफा, आमतौर पर पाजामा पहनते थे, जो न तो तंग चूड़ीदार होता था और न ढीला-ढाला ग़रारा (घाघरा) लखनवी अन्दाज का। कहना चाहिए कि अलीगढ़ पतलून नुमा पाजामे को तंग मोहरी का कर दिया जाए तो उससे समानता होती थी। कुछ कसरती शरीर वाले युवक धोती पहनते थे ताकि उसमें से सुडौल पिंडलियां दिखाई पड़ें। पिंडलियों के प्रदर्शन के लिए उनके बाल मूंडे जाते थे जिस तरह जश्न की नुमाइश के लिए सिर के बाल मूंडे जाते थे। कुछ तहमद बांधते थे। बिनोट, बान्क, लकड़ी शायद ही कोई हो जो न जानता हो। बचपन ही में यह कला सिखाई जाती थी। तीतरों और मुर्गियों की पालियां (लड़ाई कराने के स्थान) प्रत्येक मुहल्ले में किसी न किसी बाग़ में होती थीं.... ।"

यूसुफ़ हुसैन की लेखनी की स्फूर्ति केवल क़ायमगंज के सुदंर नवयुवकों के चित्रांकन तक सीमित नहीं जब 1926 में उच्च शिक्षा के लिए फ्रांस पहुँचते हैं तो पैरिस के जीवन के

अनन्त रंगीन चित्र 'दयारे-फरंग' के शीर्षक के अन्तर्गत खीचं कर रख दिए हैं। देखिए 'फ्रांस के प्रथम प्रभाव' के अन्तर्गत क़ायमगंज का यह सुदंर नवयुवक क्या कहता है...

"मुझे तूलोन में जिस वस्तु ने सर्वाधिक प्रभावित किया वह बड़े-बड़े युद्धपोत न थे, वरन् नारी सौंदर्य था। मैंने ऐसा हंसमुख सौंदर्य अपने जीवन में पहले कभी नही देखा था। दक्षिण फ्रासं की स्त्रियां अत्यन्त सुदंर होती हैं। उनके सौंदर्य में मुझे पूर्वीपन का अनुभव हुआ। गौर वर्ण, काले केश और नेत्र, क़द बूटा-सा, लड़कियाँ और कुछ अधेड़ अवस्था की महिलाएं भी कपोलों पर पाउडर तथा अधरों पर लाली लगाती थीं जिनसे उनका रुप निखर जाता था। साधारण रुप में तीव्रगामी हैं जैसे कोई बडी मसरुफ हों या फिर उनकी चाल का यही अन्दाज हो। 'दाग़' के अनुसार-

ठहर गए वो जहाँ सर्व-ए-बहार थे गोया,[1]
अगर चले तो नसीमे-बहार होके चले

मैंने अब तक हिन्दुस्तान में जो अंग्रेज महिलाएं देखी थीं उनमें अधिकांश बांस की खीची की भाँति लम्बी, पतली, बेडौल थी, जैसे हीजड़ा चला आ रहा हो। रगं चूने की भाँति सफेद झग, सलौनापन (नमक) नाम को नहीं।"

इन दिलचस्प तथा रंगीन चित्रों के बावजूद आत्मकथा लिखने के नियमों का सफलता से पालन न कर सके। एक तो उनमें रिन्दों (मनमौजी) जैसा साहस नहीं जो जीवन को खोलकर प्रस्तुत कर सके, दूसरे वह अकसर भूल जाते हैं कि वह आत्मकथा लिख रहे हैं या व्यक्तित्व और घटनाओं पर लेख। जैसे 'फखे खान्दान' के शीर्षक से उन्होंने चौथे अध्याय में जो 71 पृष्ठ डा. जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर लिखा है। उनसे आत्मकथा का संतुलन बिगड़ गया है। इसी प्रकार 'दयारे फरंग' वाले अध्याय में उन्होंने 'सो बोर्न' के इतिहास पर जो पृष्ठ लिखे हैं उनमें फिर आत्मकथा का दायित्व न अदा करते हुए वह इतिहासकार बन गए हैं। अच्छा आत्मकथाकार न तो इतिहासकार होता है और न आलोचक व अनुसन्धानकर्ता। वह सर्वप्रथम स्वयं से सच्चा होता है और अपने समय के उन लघु कणों तथा रंगों का चित्रकार होता है जो उसके व्यक्तित्व से होकर गुजरते हैं। 'ग़ालिब' के अनुसार-

अपनी हस्ती ही से हो, जो कुछ हो,[2]
आगही गर नहीं, ग़फ़लत ही सही

अच्छी आत्मकथा की वास्तविक परीक्षा 'अपनी हस्ती' के सम्बन्ध से किया जाना चाहिए। यदि कोई साहित्यकार अपनी मूर्खता पर नहीं हंस सकता, तो वह दूसरों पर हँसने का अधिकारी नहीं। एक अच्छी आत्मकथा के लिए ईमानदारी, सच्चाई और साहस की आवश्यकता होती है। कोई मक्कार, रियाकार, धोखेबाज या तंगनजर मनुष्य अच्छी

1. महबूब चलते-चलते ऐसे खड़े हो गये जैसे सर्व का पेड़ हो, और चले तो ऐसे चले जैसे वसंत-बयार चल रही हो।
2. अपने वुजूद से जो हो तो हो, इस से बाहर नहीं। इस वुजूद से स्मृति भी है, और विस्मृति भी।

आत्मकथा नहीं लिख सकता। कभी-कभी आत्मकथा इस कारण भी ठिठुरकर रह जाती है कि उसका लेखक समकालीनों से डरता है, या अनावश्यक प्रेम, संकोच में फंस जाता है। यूसुफ हुसैन भी बहुधा कन्नी काटकर निकल जाते है-

अफसोस बेशुमार सुखनहाए गुफ्ती,[1]
खौफ फसादे-खल्क से ना गुफ्ता रह गए

'यादों की दुनिया' एक ऐसी आत्मकथा है जिसको समझने के लिए यूसुफ हुसैन के जीवनीकार को बहुत अनुसन्धान करना पडेगा। इसमें उन्होंने अपने चरित्र या जीवन के बहुत कम चित्र उजागर किए हैं। इसमें अपनें और 'ग़ैर' दोनों के सम्बन्ध से बहुत से खांचे हैं, जिन्हें उसने अत्यन्त कुशलता से साहित्य-ज्ञान द्वारा भर दिया।

इसकी भाषा-शैली में, जहाँ-जहाँ आत्मकथा की आवश्यकताओं को पूरा करती है, विलक्षण प्रवाह है। लेखक की भाषा में क़ायमगंज के ग्रामीण मुहावरों की अधिक पुट है, जिससे लेखन-शैली में एक विशेष प्रकार की सजीवता आ जाती है। इस प्रकार की भाषा लिखने का लेखक को कभी वास्ता नहीं पड़ा था, अतः वह अधिकतर इक़बाल के दर्शन के शिखरों या ग़ालिब के ईरानी के उपवनों की सैर ही कर रहा था। शायद यही कारण है कि बोल-चाल की भाषा लिखने में उनको कठिनाई अनुभव हुई है। इसके लिए उसके पास कोई उपाय नहीं था कि वह क़ायमगंज के पठानों की कस्बाई भाषा का आश्रय ले, जो अनुचित नहीं। लेकिन अधिकाशं रुप में प्राचीन उर्दू की शेष निशानी का संकेत करती है। उर्दू गद्य दिल्ली और लखनऊ के सांस्कृतिक दबाव के कारण किताबी ही बनकर रह गई है। एक प्रकार से कस्बाई ज़ुबान की पुट इस किताबी गद्य में प्रफुल्लता का नया झोंका ले आती है। 'यादों की दुनिया' का इस दृष्टि से महत्व रहेगा।

8. खुतबात गारसाँ द तासी (अनुवाद)

अपने हैदराबाद के प्रवास के आरम्भिक दिनों में मौलवी अब्दुल हक़ के अनुरोध पर विख्यात फ्रांसीसी प्राच्यविद् गारसां द तासी के व्याख्यानों में से तीन का अनुवाद यूसुफ हुसैन ने किया था। यह अनुवाद शुद्ध भाषा में है जिससे अनुवादक के फ्रांसीसी भाषा पर पूर्ण अधिकार का अनुमान लगाया जा सकता है, जो उन्हें आरम्भ से ही प्राप्त था। अनुवाद अत्यधिक चुस्त एवं स्वस्थ है वैसे इतना चुस्त भी नहीं कि उर्दू मुहावरे का खून हो जाए। आरम्भ में इसके कुछ भाग "उर्दू" पत्रिका में प्रकाशित हुए थे।

1. खेद है कि अनेक कहने योग्य बातें अनकही रह गई, यदि कह दिया जाता तो संसार में फसाद हो जाता।

6

अंग्रेजी भाषा में रचनाएँ

यूसुफ़ हुसैन के द्वारा अंग्रेजी भाषा में रची गई रचनाएं हमारे अध्ययन का क्षेत्र नहीं है, लेकिन कोई मोनोग्राफ उस समय तक संपूर्ण नहीं कहा जा सकता जब तक कि कम-से-कम उनका परिचय न कराया जाए।

अंग्रेजी में ग़ालिब-काव्य के अंग्रेजी अनुवाद का वर्णन हम ग़ालिब विषयक साहित्य (ग़ालिबियात) में कर चुके हैं। अंग्रेजी में लिखे गए उनके अन्य ग्रन्थों का सम्बन्ध उनके असल व्यवसाय यानी 'इतिहास' से है। वह उस्मानिया विश्वविद्यालय में, फ्रांस से आने के पश्चात् 1930 में रीडर और 1945 में प्रोफेसर तथा अध्यक्ष के पद पर आसीन रहे। अपने व्यवसाय की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए उन्होंने स्वंय को इतिहासकार के रुप में दर्शाना भी जरुरी समझा।

(1) L' Inde Mystique au Moyen Age
(मध्यकालीन भारत में सूफ़ीमत)

यह उनके डॉक्टरेट (Doctorat d' Universite) का शोधप्रबन्ध था जो उन्होंने पेरिस विश्वविद्यालय में डिग्री प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रस्तुत किया था और वहीं वह प्रथम एवं अंतिम बार 1929 में प्रकाशित हुआ था। 'यादों' की दुनिया में लेखक ने लिखा है कि अपने मद्रास के भाषणों (Glimpses of Medieval Indian Culture) के प्रारम्भिक दो अध्याय लिखने में उन्होंने अपने इस शोधप्रबन्ध से बहुत लाभ उठाया। यह अब प्राप्त नहीं है।

(2) Asif Jah I (1936) जो दूसरे संस्करण में "The First Nizam" के नाम से प्रकाशित हुआ। पेरिस से हैदराबाद आकर और उस्मानिया विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग में नियुक्त हो जाने के पश्चात् अति श्रमपूर्वक इतिहास के बिखरे अंशों को सम्पादित किया। आसिफ जाह प्रथम के व्यक्तित्व और उनके ऐतिहासिक कार्यों पर इससे श्रेष्ठ ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ।

(3) 1954 में यूसुफ हुसैन ने मद्रास विश्वविद्यालय के निमंत्रण पर 1957 में जो विस्तार-व्याख्यान (एक्सटेंशन लेक्चर) दिए वे (Glimpses of Medieval Indian Culture) के शीर्षक से प्रकाशित हुए जिसमें प्रथम व्याख्यान; 'इस्लाम और भक्ति', दूसरा 'भारत में सूफ़ीमत', तीसरा 'मध्यकालीन शिक्षा पद्धति' चौथा 'उर्दू भाषा का उद्भाव और विकास', पांचवाँ 'सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियां' सम्मिलित हैं। ऐसा कोई मध्यकालीन ग्रन्थ नहीं जिसमें इस पुस्तक के संदर्भ न मिलें।

(4) 1967 से 1970 तक यूसुफ़ हुसैन ने शिमला के "इण्डियन इंस्टिट्यूट आफ़ एडवांस्ड स्टडीज़" के फैलों के रूप में कार्य किया और एक बार पुनः अपने इतिहास के अध्ययन का निचोड़ Indian Muslim Polity (Turko-Afgan Period) में प्रस्तुत किया। इस पुस्तक से उनके इतिहास-ज्ञान तथा मध्यकालीन ऐतिहासिक दृष्टि का अनुमान लगाया जा सकता है। इसे शिमला के इंस्टिट्यूट ने 1971 में प्रकाशित किया। यही वह वर्ष है जब यूसुफ हुसैन अपने 'व्यवसाय' से पुनः अपनी रुचि यानी ग़ालिब, इक़्बाल और हाफ़िज़ की ओर आकृष्ट होते हैं। उम्र के शेष सात वर्षों तक वह इतिहासकार के स्थान पर साहित्यकार के रुप में लेखन-कार्य करते रहे।

उस्मानिया विश्वविद्यालय के सेवा काल में वह हैदराबाद आर्कीव्ज़ के निदेशक और सलाहकार भी रहे। इस अवधि में अपनी प्रशासनिक व्यस्तताओं के बावजूद शोध की ओर से प्रमाद नहीं किया और वहाँ संदर्भ दस्तावेज़ों के निम्नलिखित मूल फारसी संग्रह, अंग्रेज़ी अनुवाद सहित प्रकाशित किए-

1. Selected Documents of Shahjahan's Reign
2. Selected Documents of Aurangzeb's Reign
3. Selected Documents of the Deccan (1660-71)
4. Farmans of Deccan Sultans
5. Newsletters (1767-99)
6. Diplomatic correspondence between Nizam Ali Khan and the East India Company

आज यह ऐतिहासिक दस्तावेज उस युग का इतिहास लिखने वालों के लिए संदर्भ-ग्रन्थों का महत्त्व रखती है।

7. Selected Documents of Aligarh Archives

अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी की प्रो-वाइस-चांसलरी की अवधि में लगभग दो वर्षों तक मौलाना आज़ाद पुस्तकालय के मानद पुस्तकालय-अध्यक्ष के रुप में सेवा करते रहे। जैसा कि उनकी कार्य-पद्धति रही है वह किसी ज्ञान के अवसर को हाथ से नहीं जाने देते थे। अतः उन्होंने मौलाना आज़ाद पुस्तकालय में एक पृथक मुस्लिम यूनिवर्सिटी आर्कीव्ज़ का विभाग स्थापित किया। और यूनिवर्सिटी के विभिन्न कार्यालयों में जो पुराने पत्र, कागज़ (लेख्य) थे उन्हें क्रमबद्ध रुप में सजाया। यह पत्र सर सैयद अहमद ख़ाँ और मोहसिनुल-मुल्क के काल से लेकर वर्तमान काल तक हज़ारों की संख्या में प्राप्त हैं। यूसुफ हुसैन ने इनमें से चयनित कर तथा पत्रों के आधार पर उपर्युक्त खण्ड प्रकाशित किए। "उनमें सर सैयद अहमद ख़ाँ द्वारा स्थापित 'साइंटिफिक सोसाइटी' की कार्यवाहियाँ तथा एम. ए. ओ. कॉलेज से सम्बंधित दस्तावेज़े हैं। अनेक लोगों को लिखे गए सैयद

अहमद ख़ाँ के पत्र तथा अन्य लोगों के द्वारा लिखे गए सर सैयद अहमद ख़ाँ को पत्र भी शामिल हैं।" यह केवल एक महत्वपूर्ण कार्य का आरम्भ था, जिसे यदि जारी रखा जाता तो 'अलीगढ़-आन्दोलन' के विषय में अत्यन्त लाभप्रद सूचनाएँ भावी इतिहासकारों के लिए एकत्रित हो जातीं।